गुरुपूर्णिमा विशेष
मूल्य : रु. ६/-
अंक : १७५
जुलाई ०७
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥
'जो पुरुष अपने ही समान दूसरों को भी सुखी देखने की कामना रखते हैं, उनके पास रहने से विद्या प्राप्त होती है, अज्ञान का अंधकार दूर होता है, धन प्राप्त होता है और दरिद्रता का विनाश होता है । अतएव हम सब आत्मदर्शी महापुरुषों के समीप रहें ।'
(ऋग्वेद : १.६.३, यजुर्वेद : २९.३७, सामवेद : उत्तरार्चिक १३.४.११, अथर्ववेद : २०.२६.६)
संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
ऋषि प्रसाद
हिन्दी
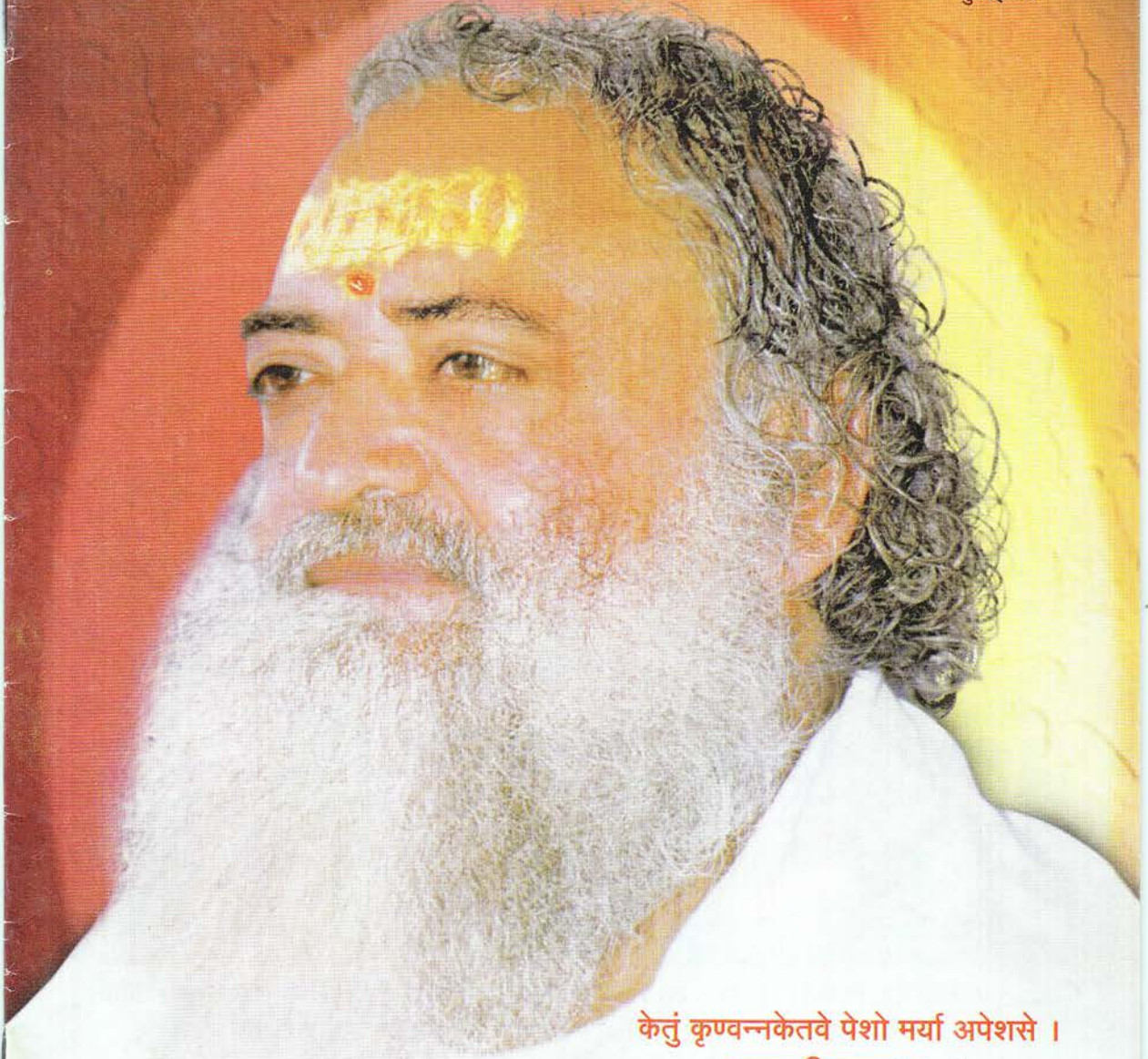
देगलूर जि. नांदेड (महा.) के भक्तजन सत्संकल्पपूर्वक जप-अनुष्ठान करते हुए तथा
रायपुर (छ.ग.) के विद्यार्थी शिविर में नशामुक्ति का संदेश देते विद्यार्थी।
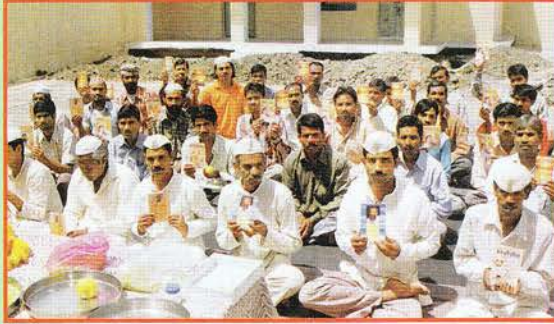
नसरूल्लागंज जि. सिहोर (म.प्र.) के जेल में सत्संग व सत्साहित्य-वितरण तथा
अलिबाग जि. रायगढ़ (महा.) के जिला कारागृह में भगवत्कीर्तन एवं पाठ का आयोजन।

पाँवटा साहिब जि. सिरमौर (हि.प्र.) एवं भरतपुर (राज.) में पूज्यश्री के शिष्य भगवन्नाम-संकीर्तन
की तुमुल ध्वनि पर झूमते-झुमाते एवं क्षेत्र के लोगों को यात्रा में समाकर आगे बढ़ते हुए।

बुरहानपुर (म.प्र.) में माँ भगवती के मेले हेतु धूप में पैदल चलकर आनेवाले भक्तों के लिए तथा
उल्हासनगर जि. थाने (महा.) के नागरिकों हेतु छाछ वितरित कर आत्मसंतोष प्राप्त करते पूज्यश्री के शिष्य।

ऋषि प्रसाद

वर्ष : १८ अंक : १७५
जुलाई २००७ मूल्य : रु. ६-००
आषाढ़-श्रावण, वि.सं.२०६४

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ६०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

अन्य देशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 80

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अनदावाद-५.
फोन : (०७९) ३९८७७७१४, ६६११५७१४.
e-mail : ashramindia@ashram.org
: ashramindia@gmail.com
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : दिव्य भास्कर, भास्कर हाऊस, मकरबा, सरखेज-गाँधीनगर हाईवे, अहनदाबाद - ३८००५१.
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें। पता-परिवर्तन हेतु एक माह पूर्व सूचित करें।

अनुक्रम

भगवान वेदव्यासजी

कलियुग में अल्प सत्त्व, थोड़ी आयु व बहुत क्षीण बुद्धि के लोग होंगे। वे संपूर्ण वेदों का स्मरण नहीं रख सकेंगे। वैदिक अनुष्ठानों एवं यज्ञों के द्वारा आत्मकल्याण कर लेना कलियुग में असंभव हो जायेगा - यह बात सर्वज्ञ, दयामय भगवान से छिपी नहीं थी। भगवान जीवों के कल्याण के लिए द्वापर के अंत में महर्षि वसिष्ठजी के पौत्र श्री पराशर मुनि के अंश से माता सत्यवती में प्रकट हुए। महर्षि कृष्णद्वैपायन के रूप में भगवान का यह अवतार कलियुग के जीवों को शास्त्रीय ज्ञान सुलभ कराने के लिए हुआ।

पुराणों के अनुसार ब्रह्माजी से लेकर कृष्णद्वैपायन व्यासजी तक अट्ठाईस व्यासों की परंपरा मिलती है। महाभारतकालीन दो कृष्ण प्रसिद्ध हुए हैं - एक वासुदेव कृष्ण तथा दूसरे द्वैपायन कृष्ण। व्यासजी का जन्म भी यमुनाजी के ही किसी द्वीप में हुआ था, इसीलिए उन्हें 'द्वैपायन', कृष्णवर्ण के कारण 'कृष्णद्वैपायन', बदरीवन में निवास के कारण 'बादरायण' तथा वेदों का विभाग करने से 'वेदव्यास' कहते हैं।

भगवान वेदव्यासजी प्रकट होते ही माता की आज्ञा लेकर तप करने चले गये। वे स्वयं भगवान के अवतार हैं, उन्हें तपस्या की क्या आवश्यकता थी ? फिर भी लोक कल्याण के लिए उन्होंने संसार के सामन तपस्या का सुंदर आदर्श रखा।

व्यासजी की माता सत्यवती ही कालांतर में राजा शांतनु की पत्नी और गंगापुत्र भीष्म की सौतेली माँ बनीं। अतएव व्यास और पितामह भीष्म का संबंध अत्यंत निकट का था। कौरव-पांडवों के वे ही कुलधर हैं। पांडवों के वनवास के बारह वर्ष समाप्त होने पर व्यासजी ने पुनः एक बार उनके पास आकर धर्म और नीति से परिपूर्ण आत्मसंयम का उपदेश दिया। जिसके कारण वे अज्ञातवास का तेरहवाँ वर्ष विषम स्थितियों में रहकर भी सफलतापूर्वक बिता सके। तेरहवें वर्ष के बाद जब युधिष्ठिर ने कौरवों से अपना राज्य वापस माँगा, तब व्यासजी ने फिर धृतराष्ट्र को समझाया परंतु क्रूर काल ने अपना प्रभाव दिखाया। वयोवृद्ध, प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्र की मति पर मोह का आवरण छाया रहने से उन्होंने व्यासजी के वचनों का आदर नहीं किया। त्रिकालज्ञ व्यासजी काल की महिमा से सुपरिचित थे। जिसे उन्होंने 'महाभारत' में इस रूप में प्रकट किया है :

'काल सबकी जड़ है, काल संसार के उत्थान का बीज है। काल ही अपने वश में करके उसे हड़प लेता है। वही काल समय आने पर बलवान बनकर पुनः दुर्बल बन जाता है।'

वेदव्यासजी अप्रतिहतगति और अतीव सामर्थ्यवान हैं। जब-जब माता सत्यवती ने उन्हें स्मरण किया तब-तब वे तत्काल उपस्थित हो गये। इससे उनकी इच्छागति का प्रमाण मिलता है।

व्यासजी ने ही पांडवों के वनवास के दौरान युधिष्ठिर को माध्यम बनाकर अर्जुन को प्रतिस्मृति विद्या प्रदान की थी तथा देवदर्शन में सक्षम बनाया था। युद्ध के समय राजा धृतराष्ट्र की प्रार्थना पर उन्होंने ही संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान की थी, जिससे संजय को युद्ध-दर्शन एवं भगवान श्रीकृष्ण के मुख से निकले गीता-उपदेश के श्रवण तथा उनके विराट विश्वरूप के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो सका।

कौरव-पांडवों के युद्धकाल में भी वे सदैव स्थिति को सँभालते रहे। युद्ध के अंत में उन्होंने

शोकमग्न धृतराष्ट्र को धैर्य बँधाया तथा शोकसंतप्त युधिष्ठिर को नीति, धर्म और अध्यात्म की शिक्षा के लिए भीष्मजी के पास भेजा तथा अश्वमेध यज्ञ की प्रेरणा दी ।

युद्धोपरांत धृतराष्ट्र, गांधारी, कुंती एवं अन्य कुरुकुल-भामिनियों को उनके मृत स्वजनों के दर्शन कराकर तथा इच्छुकों को उनके स्वजनों के लोक में भेजकर व्यासजी ने अपने अलौकिक सामर्थ्य का परिचय दिया था ।

जनमेजय ने श्री वैशम्पायनजी द्वारा इस वृत्तांत को जानकर जब अपने पिता महाराज परीक्षित के दर्शन की इच्छा व्यक्त की, तब वहाँ उपस्थित व्यासजी ने उनकी इच्छा पूरी कर पुनः एक बार अपने अमित सामर्थ्य का परिचय दिया था ।

वेदव्यासजी की रचनाएँ

संपूर्ण संसार के जीवों को परमार्थ का मार्ग दिखाने के लिए ही भगवान वेदव्यासजी का अवतार है । उन सर्वज्ञ करुणासागर ने 'ब्रह्मसूत्र' का निर्माण करके तत्त्वज्ञान को व्यवस्थित रूप प्रदान किया । लोगों को आलसी, अल्पायु, मंदमति और पापरत देखकर उन्होंने वेदों का विभाजन किया । व्यासजी ने देखा कि वेदों के पठन-पाठन का अधिकार तो केवल द्विजाति पुरुषों को ही है । सभी लोगों का उद्धार होना चाहिए, उन्हें भी धर्म का ज्ञान होना चाहिए, इसलिए उन्होंने 'महाभारत' की रचना की । इतिहास के नाना आख्यानों के द्वारा व्यासजी ने धर्म के अंगों का 'महाभारत' में बड़े सरल ढंग से वर्णन किया ।

क्या करना चाहिए और क्या नहीं ? - इस कर्तव्य-अकर्तव्य, धर्म-अधर्म विषयक निरूपण के लिए व्यासजी ने अनेक स्मृतियों की रचना की ।

पुराणों, उपपुराणों तथा स्मृतियों की विपुल ज्ञानराशि के मूल आधार हैं महर्षि वेदव्यासजी ।

भगवान वेदव्यासजी अष्टचिरंजीवियों में से एक हैं । वे लोक-मांगल्य में रत ब्रह्मनिष्ठ महापुरुषों के रूप में भी नित्य प्रकट हैं और इसीलिए ऐसे महापुरुषों को 'व्यास' तथा जिस स्थान पर बैठकर वे सत्संग करते हैं उसे 'व्यासपीठ' कहा जाता है ।

महर्षि वेदव्यासजी एवं उनके युगानुकूल प्रकट रूप महापुरुषों के मनुष्य-जाति पर अनंत उपकार हैं । यह जगत उनका खूब-खूब ऋणी है । उनके द्वारा प्रदान किये गये ज्ञान, भक्ति, उपासना एवं सेवा के मार्ग पर अडिग श्रद्धा-विश्वास एवं अविचल निष्ठापूर्वक चलते हुए अपना आत्मकल्याण साध लें । उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का यही एक उत्तम मार्ग है ।

सहजोबाई की बानी

साध मिले दुख सब गये, मंगल भये सरीर ।
बचन सुनत ही मिटि गई, जनम मरन की पीर ॥
सतसंगत की नाव में, मन दीजै नर नार ।
टेक बल्ली दृढ़ भक्ति की, सहजो उतरै पार ॥
साध संग तीरथ बड़ो, ता में नीर बिचार ।
सहजो न्हाये पाइये, मुक्ति पदारथ चार ॥
जो आवै सतसंग में, जाति बरन कुल खोय ।
सहजो मैल कुचैल जल, मिलै सु गंगा होय ॥
सहजो संगत साध की, कांग[1] हन्स ह्वै[2] जाय ।
तजि के भच्छ अभच्छ[3] कूँ, मोती चुगि चुगि खाय ॥
जब चेतै जबही भला, मोह नींद सूँ जाग ।
साधू की संगत मिलै, सहजो ऊँचे भाग ॥
सहजो संगत साध की, छूटै सकल बियाध ।
दुर्मति पाप रहै नहीं, लागै रंग अगाध ॥
साध वृच्छ बानी कली, चर्चा फूले फूल ।
सहजो संगत बाग में, नाना फल रहे झूल ॥
सहजो दरसन साध का, दो नैनों भरि लेहि ।
तिहूँ ताप नसि जायेंगे, सीतल होगी देहि ॥
सहजो दरसन साध का, देखूँ वारूँ प्रान ।
जिन की किरपा पाइये, निर्भय पद निर्बान ॥

१. कौआ २. हो ३. भक्ष्य-अभक्ष्य

महामुनि व्यासजी का लोक कल्याणकारी उपदेश

एक बार कुरुक्षेत्र में महामुनि व्यासजी के दर्शन के लिए कश्यप, जमदग्नि, भरद्वाज, वसिष्ठ, मार्कण्डेय, वाल्मीकि, विश्वामित्र, माण्डव्य, पिप्पलाद, दुर्वासा, लोमश, नारद, वैशम्पायन, कपिल, सनत्कुमार आदि अनेक ऋषि-महर्षि पधारे। वेदवेत्ता व्यासजी ने आगन्तुक मुनियों का सम्मान किया। उन्होंने भी व्यासजी की पूजा कर आपस में कथा-वार्तालाप छेड़ दिया।

मुनियों ने कहा : ''मुने ! आपके मुख से निःसृत पवित्र तथा धर्ममय वचनामृत का पान करने से हम अघाते नहीं । आप उत्पत्ति, प्रलय तथा प्राणियों के कर्मों की गति को जानते हैं। मुने ! किस उपाय, दान, धर्म तथा नियम के करने से नरकों के दुःख ननुष्यों को प्राप्त नहीं होते ? कैसे स्वर्ग मिलता है ? किस कर्म से नरक प्राप्त होता है ?''

व्यासजी ने कहा : ''हे मुनियो ! यहाँ निर्धारित आयु तक भोग करके स्वयं न चाहता हुआ भी प्राणी जल, अग्नि, विष, शस्त्र, भूख, व्याधि, पर्वत-पतन - इनमें से किसी निमित्त को प्राप्त कर प्राणों से मुक्त हो जाता है।

जो मनुष्य अन्नदान तथा जलदान किये रहता है, उसे वह दत्त वस्तु उस विपत्ति में आनन्द देती है । जिसने पवित्र चित्त से श्रद्धापूर्वक अन्नदान किया है, उसे बिना अन्न के भी उस समय तृप्ति मिलती है । जो असत्य नहीं बोलता, प्रीतिभेद नहीं करता तथा आस्तिक एवं श्रद्धालु है, वह सुख से मृत्यु प्राप्त करता है । जो मनुष्य देवों व सदाचारी ब्राह्मणों की पूजा में निरत रहता है, किसीसे डाह नहीं करता तथा स्वच्छ, दानी एवं लज्जाशील है, उसकी मृत्यु सुखपूर्वक होती है। जो न इच्छा से, न कठिनाई से, न द्वेष से ही धर्म का परित्याग करता है और शास्त्रविहित कर्म करता है तथा सौम्य है, वह सुख से मरता है। जो नर प्यासे को जल तथा भूखे को अन्न देता है, वह समय आने पर सुखपूर्वक मृत्यु प्राप्त करता है। धन देनेवाले सर्दी को जीतते हैं, चन्दन देनेवाले गर्मी को जीतते हैं और दूसरे के उद्वेग को दूर करनेवाले जन प्राणनाशिनी वेदना को पार कर लेते हैं। ज्ञानदाता मोह को तथा दीपदाता अंधकार को पार करता है।

मिथ्या गवाही देनेवाले, असत्यवादी तथा वेदनिन्दक व्यक्ति मोह से मृत्यु प्राप्त करते हैं। भयंकर, दुर्गन्धयुक्त तथा मुद्गर हाथों में लिये यम के दुरात्मा पुरुष उनके पास आते हैं, जिन्हें देखते ही वे काँपने लगते हैं। तब वे भाई, माता, पिता आदि के नाम लेकर चिल्लाने लगते हैं । विप्रवृन्द ! उनकी वह अस्फुट वाणी एकाक्षर-सी प्रतीत होती है । डर से आँखें घूमने लगती हैं और मुँह लार की वृष्टि करने लगता है; तब वे वेदनायुक्त शरीर को छोड़ देते हैं और वायु से प्रेरित होकर दूसरे शरीर को प्राप्त करते हैं। वह शरीर माता-पिता से उत्पन्न नहीं होता । वह केवल कर्म-भोग के लिए मिलता है। उस शरीर में भी कर्मानुसार अवस्था प्राप्त कर जीव कष्ट भोगते हैं।

इस लोक में थोड़ा भी पाप करनेवाला मनुष्य यमलोक में घोर नरक की यातना पाता है। मूर्ख मनुष्य धर्मशास्त्र-प्रतिपादित सुन्दर वचन को नहीं सुनते हैं बल्कि प्रतिवाद करते हुए कहते हैं - 'प्रत्यक्ष किसने देखा है ?' जो मनुष्य दिन-रात

यत्नपूर्वक पाप करते हैं, वे मोहित होकर भूल से भी धर्माचरण नहीं करते हैं। जो परलोक को नहीं मानते हैं और 'यहीं फल का भोग होता है' ऐसा मानते हैं, वे नराधम घोर नरक में गिरते हैं। नरक का वास भयंकर है और स्वर्गवास सुखप्रद है। मनुष्य शुभ-अशुभ कर्म करके स्वर्ग-नरक प्राप्त करते हैं।''

मुनियों ने कहा : ''हे सज्जनों में श्रेष्ठ ! अतिभीषण यममार्ग के बारे में ऐसा कोई उपाय है, जिससे मनुष्य सुखपूर्वक यमलोक जा सकें ?''

व्यासजी ने कहा : ''इस लोक में जो मनुष्य धार्मिक, अहिंसानिरत, गुरु-सेवा में रत, देवों व सदाचारी ब्राह्मणों के पूजक तथा मनुष्यलोकधारी हैं, वे पत्नी-पुत्र समेत यममार्ग में जैसे जाते हैं, वह मैं आप लोगों को बतलाता हूँ।

जो सत्यभाषण करते हैं तथा बाहर-भीतर से निर्मल हैं, वे देवतुल्य होकर विमानों से यममन्दिर जाते हैं। जो **'नमो ब्रह्मण्यदेव !'** कहकर भगवान विष्णु की तथा **'पापहरे'** कहकर गाय की वन्दना करते हैं, वे उस मार्ग में सुख से जाते हैं। जो दूसरों (को खिलाने) के बाद भोजन करते हैं और दम्भ, मिथ्या (झूठ) से रहित हैं, वे सारस पक्षी से युक्त रथों से उस मार्ग में जाते हैं। जो पाक्षिक उपवास करते हैं, वे शार्दूलों (पक्षी या बाघ) से युक्त रथों से यमपुरी जाते हैं और देवता तथा असुर उनकी सेवा करते हैं। जो इन्द्रिय संयमपूर्वक मासिक उपवास करते हैं, वे सूर्य के समान प्रदीप्त रथों से यमालय जाते हैं। जो जितेन्द्रिय, क्षमाशील, क्रोध, मोह तथा अभिमान से रहित और प्राणिमात्र को अभयदान देनेवाले हैं, वे देवों व गन्धर्वों से सेवित तथा अति कान्तियुक्त होकर पूर्णचन्द्र के समान प्रकाशवाले विमानों से यमपुर जाते हैं। जो नर सत्य-शौच से युक्त हैं तथा मांसभक्षण नहीं करते हैं, वे भी सुख से यमपुर जाते हैं।

पुण्य के प्रताप से मनुष्य धर्मराज को अपने कल्याणमय पिता के रूप में देखते हैं। इसलिए मोक्षफलदायक धर्म की उपासना सदा करनी चाहिए। धर्म ही माता, पिता, भाई, स्वामी, मित्र, बन्धु, रक्षक, धाता तथा पोषक है। धर्म से अर्थ, अर्थ से काम और काम से भोग तथा सुख होता है। धर्म से ऐश्वर्य, मन की एकाग्रता और स्वर्ग का सुख मिलता है। विप्रवृन्द ! सुरक्षित धर्म महान भय से बचाता है। धर्म से देवत्व तथा ब्राह्मणत्व निःसन्देह प्राप्त होता है। द्विजश्रेष्ठो ! जब मनुष्यों के पूर्वसंचित पापों का क्षय हो जाता है, तब उन्हें धर्म करने की बुद्धि होती है।

जन्मान्तरसहस्रेषु मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ।
यो हि नाऽऽचरते धर्मं भवेत्स खलु वंचितः ॥

'हजारों जन्म के बाद दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर जो व्यक्ति धर्माचरण नहीं करता है, वह (परम लाभ से) वंचित ही रहता है।'

(श्री ब्रह्म पुराण : २१६.७८)

विप्रवृन्द ! इस प्रकार धर्मपरायण मनुष्य उत्तम जाति को प्राप्त करते हैं और अधर्मसेवी नर पशु-पक्षी की योनि में जाते हैं।

जो मनुष्य दैत्य-दानवों का दलन करनेवाले आदि-अन्त रहित भगवान को नित्य प्रणाम किया करते हैं, वे यम को नहीं देखते हैं। जो मन, कर्म तथा वाणी से भगवान के शरणागत हो चुके हैं, उन्हें पकड़ने के लिए यमदूत समर्थ नहीं होते और वे मोक्षफलभागी हो जाते हैं। द्विजवृन्द ! जो मनुष्य नित्य जगत्पति नारायण को प्रणाम करते हैं, वे वैकुण्ठ छोड़ दूसरी जगह नहीं जाते।

जो नर शठता से भी नित्य जनार्दन का स्मरण करते हैं, वे भी शरीर त्यागने के बाद सुखमय विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं। यदि अत्यन्त क्रोधी मनुष्य भी कभी हरि का कीर्तन करता है तो वह भी दोषों के क्षय हो जाने से मोक्ष प्राप्त करता है।''

*

मंत्रदाता पूजनीय हैं

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

श्री पीताम्बरदासकृत उड़िया 'नृसिंह पुराण' में एक कथा आती है :

नैमिषारण्य (जो लखनऊ के पास है) में भीलों में शबर जाति का कृपालु नाम का एक व्यक्ति 'वृक्ष नमन' मंत्रविद्या जानता था। भगवद्-अनुग्रह से मिला वह 'वृक्ष नमन' मंत्र उसके अलावा केवल उसके पुत्र को ही पता था। उसकी विद्या में ऐसा प्रभाव था कि खजूर के वृक्ष झुक जाते थे और उनका रस वह एकत्र करता था। महर्षि वेदव्यासजी ने उसको उस विद्या का प्रयोग करते देख लिया। जनसमाज को ज्ञान का प्रकाश प्रदान करने में रत व्यासजी को वह मंत्र जान लेने की जिज्ञासा हुई। व्यासजी ज्यों ही पूछने के लिए उसके नजदीक गये, त्यों ही कृपालु भाग खड़ा हुआ। व्यासजी उसके घर गये तो जैसे ही उसने देखा कि ये मेरे घर की ओर आ रहे हैं, वह घर से भी भाग गया। व्यासजी लौटकर अपने आश्रम चले गये।

कुछ दिनों के बाद फिर व्यासजी उसके घर गये तो उनको देख वह पीछे के दरवाजे से भाग गया। जब-जब उसने 'व्यासजी आ रहे हैं' ऐसा सुना, तब-तब घरवालों को बता दिया कि कोई बहाना बना दो और स्वयं भाग जाता। वह भील किसी भी कीमत पर व्यासजी से भेंट करना नहीं चाहता था। जब बहुत बार व्यासजी निराश होकर लौटे तो उसके बेटे को उन पर दया आ गयी। वह बोला : ''भगवान कृष्ण आपका आदर करते हैं। आप पांडवों के दादा व शुकदेवजी के पिताश्री हैं। आप जैसे महापुरुष हमारे घर आयें और हमारे पिताजी न मिलें, यह ठीक नहीं लगता। आखिर आपको हमारे पिताजी से क्या काम है ?''

वेदव्यासजी बोले : ''आपके पिताजी 'वृक्ष नमन' विद्या जानते हैं। मैं उनसे वह मंत्र लेना चाहता हूँ।''

''महाराज ! यह छोटी-सी बात तो मैं ही बता दूँ आपको।'' थोड़ी विधि कराके बेटे ने मंत्र दे दिया।

रास्ते में व्यासजी ने एक नारियल के वृक्ष को लक्ष्य करके मंत्र जपा। वृक्ष झुक गया। उन्होंने एक नारियल तोड़ लिया। फिर वृक्ष अपनी जगह पर जाय ऐसा मंत्र किया और अपने आश्रम में आ गये।

कृपालु भील आया तो बेटे ने सारी हकीकत बता दी। वह नाराज हो गया कि 'मूर्ख है तू ! वेदव्यासजी इतने बड़े महापुरुष हैं कि उनके पास ऋषि-मुनि और अवतारी पुरुष आकर माथा टेकते हैं, भगवान श्रीकृष्ण भी उनका आदर करते हैं। ऐसे व्यासजी को हम मंत्र कैसे दे सकते हैं ? अगर हम मंत्र दें और उनमें श्रद्धा नहीं हो- उन्होंने हमारा आदर नहीं किया तो मंत्र सफल नहीं होगा। जो मंत्र और मंत्रदाता का आदर नहीं करता उसको मंत्र फलता नहीं है।

व्यासजी मुझसे वह मंत्र जानना चाहते थे पर मैं उनके आगे आदरणीय, पूजनीय नहीं हूँ, इसलिए मैं भाग जाता था। पागल ! तूने जब व्यासजी को मंत्र बता दिया है तो अब परीक्षा लेनी होगी। तू जा और देख, व्यासजी मंत्र देनेवाले का आदर-पूजन करते हैं कि नहीं करते ? अगर

नहीं करेंगे तो उनको मंत्र नहीं फलेगा।'

ऐसे ही कई बार मैं मंत्र बता देता हूँ तंदुरुस्ती आदि का लेकिन मेरे जो साधक श्रद्धा से जपते हैं उनको तो फलता है, दूसरे रह जाते हैं। यह मंत्र-विज्ञान का नियम है।

भीलपुत्र वेदव्यासजी के पास गया तो उस समय ऋषि, मुनि, तपस्वी, जती, जोगी, बड़े-बड़े आश्रमों के अधिष्ठाता, हजारों लोगों से और राजाओं से सम्मानित होनेवाले व्यक्ति भी व्यासजी के चरणों में बैठे थे। व्यासजी की नजर भीलपुत्र पर पड़ी तो व्यासजी उठकर उसको लेवाने गये और आसन पर बैठाकर उसका सत्कार किया। भील जाति का वह युवक दंग रह गया कि जिनके आगे प्रकट होकर देव वार्तालाप करते हैं, भगवान श्रीकृष्ण जिनका आदर करते हैं ऐसे भगवान व्यासजी ने मेरा सत्कार किया !

घर जाकर अपने पिता को सारा वृत्तांत सुनाकर बोला : 'पिताजी ! इस प्रकार व्यासजी ने मेरा सत्कार किया।' तब उसके पिता ने कहा :

'सचमुच, व्यासजी महान हैं। ऐसी महानता का परिचय और कोई नहीं दे सकता।' व्यासजी की विशाल बुद्धि, मंत्र व मंत्रदाता के प्रति आदर इस घटना से स्पष्ट हो जाता है। व्यासजी की विशाल बुद्धि एवं नम्रता का सद्गुण, मंत्रदाता का आदर और मंत्र पर श्रद्धा-विश्वास हमें बहुत कुछ दे देता है।

तभी गुरु का मंत्र और कृपा फलती है

- पूज्य बापूजी

हम हमारे गुरुदेव के आश्रम में (नैनीताल के जंगल में) सेवा खोज लेते थे। आने-जानेवालों का भण्डारा (भोजन-प्रसाद) बनता था तो मैं पतीले माँजता था। वहाँ जंगल की पथरीली मिट्टी होने से कभी-कभार मेरी उँगलियों में से खून बहता था तो मैं पट्टी बाँधकर चुपके-से काम चलाता था क्योंकि कोई देख लेता तो सेवा छिन जाती। ऐसी सेवा की, ऐसी श्रद्धा रखी है तभी गुरु का मंत्र और कृपा फलती है। गुरु की आज्ञा के अनुसार जीवन बिताओ।

मेरे गुरुदेव ने कहा : ''बेटा ! जो तेरे को मिला है वह बाँटना।''

मैं तो बाँटता हूँ, मेरे चेले भी बाँटने में लगे हैं। १७,००० 'बाल संस्कार केन्द्र' हैं हमारे गुरुदेव के संस्कारों को फैलाने के लिए, १२७५ समितियाँ हैं, ऋषि प्रसाद के हजारों सेवाधारी हैं, कितनी ही गौशालाएँ हैं, कितने ही निःशुल्क राशनकार्ड हैं गरीबों के लिए, कितने ही चल-चिकित्सालय हैं। कई प्रकार के सेवाकार्य चल रहे हैं। ये सब मेरे गुरु का प्रसाद ही तो बाँट रहे हैं।

यदि चतुर्दशी के दिन आर्द्रा नक्षत्र का योग हो तो उस समय किया गया प्रणव (ॐ) का जप अक्षय फलदायी होता है। (शिव पुराण; विद्येश्वर संहिता : अध्याय १०)

यह योग १३ जुलाई २००७, आषाढ़ कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, शुक्रवार को प्रातः ५:१४ से शाम ७:१२ बजे तक है।

जल्दी से बरसे सद्गुरुओं की कृपा

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

(गुरुपूर्णिमा : २९ जुलाई २००७)

यह पूनम गुरुपूनम है, बड़ी पूनम है। तुम्हें दिलदार बनाने का संदेश देनेवाली जो पूनम है, उस पूनम को कहते हैं 'गुरुपूनम'।

लाख उपाय कर ले प्यारे कदे न मिलसि यार।
बेखुद हो जा देख तमाशा आपे खुद दिलदार॥

जैसे गधा केवल चंदन के भार को वहन करता है, चंदन के गुण और खुशबू का उसे पता नहीं; ऐसे ही जिनकी देह में ही आसक्ति है, वे केवल संसार का भार वहन करते हैं। मगर जिनकी बुद्धि, प्रज्ञा आत्मपरायण हुई है, वे उस आत्मारूपी चंदन की खुशबू का आनंद लेते हैं।

भगवान व्यास की स्मृति आज गुरुपूनम के दिन अनिवार्य है। उस दयालु पुरुष ने व्यक्ति का उत्थान तो चाहा, समाज का उत्थान भी उतना ही चाहा, अपने देश के व्यक्तियों का ही नहीं बल्कि मानवमात्र का कल्याण चाहा।

व्यासजी आठ घंटे एक आसन पर बैठ जाते। जब समाधि से जागते, भूख लगती तब बेर खा लेते और फिर अपने शास्त्र-लेखन के कार्य में लगे रहते। जो हमारी बिखरी, विकारी वृत्तियों को आत्मा में सुव्यवस्थित करा दें ऐसे महापुरुष को व्यास कहते हैं और जो अज्ञान मिटाकर आत्मज्ञान करा दें, जीवत्व से ब्रह्मत्व में जगा दें और लघुत्व से गुरुत्व में जगा दें, उन्हें गुरु कहते हैं।

हे आत्मज्ञानी गुरुओ ! विश्व में आपकी कृपा जल्दी से पुनः-पुनः बरसे। विश्व अशांति की आग में जल रहा है। उसे कोई कायदा या कोई सरकार नहीं बचा सकती। हे महापुरुषो ! हे ब्रह्मवेत्ताओ !! हे निर्दोष नारायण स्वरूपो !!! हम आपकी कृपा के ही आकांक्षी हैं, दूसरा कोई चारा नहीं। अब न सत्ता से विश्व की अशांति दूर होगी, न अक्ल-होशियारी से, न शांतिदूत भेजने से। केवल आप लोगों की अहैतुकी कृपा बरसे।

उनकी कृपा बरस ही रही है। देखना यह है कि हम दिल कितना खुला रखते हैं, हम उत्सुकता कितनी रखते हैं। जैसे गधा चंदन का भार तो ढोता है मगर उसकी खुशबू से वंचित रहता है, ऐसे ही हम मनुष्यता का भार तो ढोते हैं लेकिन मनुष्यता का जो सुख मिलना चाहिए उससे हम वंचित रह जाते हैं। मानव में औदार्य, प्रेम और समता का जो आत्मसुख निखरना चाहिए, उससे मानवता दूर-से-दूर जा रही है। कहने भर को मनुष्य हैं। द्विपाद पशु की नाईं भार ढो रहे हैं। शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक तनाव में तने जा रहे हैं।

भगवान वेदव्यास ने और सद्गुरुओं ने हमारी दुर्दशा जानी है इसलिए उनका हृदय पिघलता है। वे दयालु पुरुष आत्मसुख की, ब्रह्मसुख की ऊँचाई छोड़कर समाज में आये हैं। कोई-कोई विरले होते हैं जो उनको पहचानते हैं, उनसे लाभ लेते हैं।

ऐसे सद्गुरु जिस देश में रहते हैं, ऐसे सद्गुरुओं को झेलनेवाले साधक जिस देश में रहते हैं उसी देश में आध्यात्मिक पुरुष अवतरित होते हैं।

जिन देशों में ऐसे ब्रह्मवेत्ता गुरु हुए और उनको झेलनेवाले साधक हुए, वे आध्यात्मिकता में उन्नत हुए, वास्तव में उन्नत हुए। ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों

(शेष पृष्ठ २७ पर)

साधना हेतु अमृतोपम काल : चतुर्मास

(चतुर्मास : २६ जुलाई से २१ नवम्बर २००७)

चतुर्मास के चार महीने भगवान विष्णु योगनिद्रा में रहते हैं। इसलिए यह काल साधकों, भक्तों, उपासकों के लिए सुवर्णकाल माना गया है। इस काल में जो कोई व्रत, नियम पाला जाता है वह अक्षय फल देता है, इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति को यत्नपूर्वक चतुर्मास में कोई नियम लेना चाहिए। जिस प्रकार चींटियाँ आदि प्राणी वर्षाकाल हेतु अन्य दिनों में ही अपने लिए उपयोगी साधन-संचय कर लेते हैं, उसी प्रकार साधक-भक्त को भी इस अमृतोपम समय में भगवान के संतोष के लिए शास्त्रोक्त नियमों, जप, होम, स्वाध्याय एवं व्रतों का अनुष्ठान कर सत्त्व की अभिवृद्धि एवं परमात्म-सुख प्राप्त करना चाहिए।

जो व्यक्ति भगवान के उद्देश्य से केवल शाकाहार करके चतुर्मास के चार महीने व्यतीत करता है वह धनी होता है। जो भगवान विष्णु के योगनिद्रा काल में प्रतिदिन नक्षत्रों के दर्शन करके ही एक बार भोजन करता है वह धनवान, रूपवान और माननीय होता है।

जो श्रीहरि के योगनिद्रा काल में व्रतपरायण होकर चतुर्मास व्यतीत करता है वह अग्निष्टोम यज्ञ का फल पाता है। जो ईमानदारी के अन्न का भोजन करता है उसका अपने भाई-बंधुओं से कभी वियोग नहीं होता। जो ब्रह्मचर्य-पालन पूर्वक चतुर्मास व्यतीत करता है वह श्रेष्ठ विमान में बैठकर स्वेच्छा से स्वर्गलोक में जाता है। जो सम्पूर्ण चतुर्मास नमक का त्याग करता है उसके सभी पूर्तकर्म (परोपकार एवं धर्मसंबंधी कार्य) सफल होते हैं।

चतुर्मास में प्रतिदिन स्नान करके जो भगवान विष्णु के आगे खड़ा हो 'पुरुष सूक्त' का जप करता है उसकी बुद्धि बढ़ती है।

जो मनुष्य चतुर्मास में श्रद्धा-भक्ति के साथ विष्णु-चरणामृत पान करता है उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। कटोरी में जल को देखते हुए सौ बार भगवन्नाम जपें वही बन गया भगवद् चरणामृत। **जो नित्य भगवान सूर्य या गणपतिजी को नमस्कार करता है उसे आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और कांति की प्राप्ति होती है।** चतुर्मास में पलाश के पत्तों की पत्तल पर भोजन करना पापनाशक है।

क्षीरसमुद्र में योगनिद्रा करनेवाले भगवान जिस दिन शयन करते (शयनी एकादशी) और उठते (देवउठी एकादशी) हैं, उन दिनों में अनन्य भक्तिपूर्वक उपवास करनेवाले मनुष्यों को भगवान शुभ गति प्रदान करते हैं।

किसी कारण से यदि चतुर्मास के चारों महीनों में नियमों का पालन करना सम्भव न हो तो केवल कार्तिक मास में ही इन नियमों का पालन करें।

जिसने कुछ उपयोगी वस्तुओं को पूरे चतुर्मास में त्याग देने का नियम लिया हो, उसे वे वस्तुएँ सात्त्विक ब्राह्मण को दान करनी चाहिए। ऐसा करने से ही वह त्याग सफल होता है।

जो मनुष्य जप, नियम, व्रत आदि के बिना ही चतुर्मास व्यतीत करता है वह मूर्ख है और जो इन साधनों द्वारा इस अमूल्य काल का लाभ उठाता है वह मानों, अमृतकुंभ ही पा लेता है।

*

F2

सर्वांगीण विकास के पाँच दिव्य सोपान

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

एकाग्रता, श्रद्धा, सच्चरित्रता, अनासक्ति और संयम - ये पाँच साधन इतने प्रभावशाली हैं कि छोटे-से-छोटे व्यक्ति को भी महान बनाने में देर नहीं करते । इसके विपरीत चंचलता, अश्रद्धा, दुश्चरित्रता, आसक्ति और असंयम- ये दुर्गुण बड़े-से-बड़े व्यक्ति को भी छोटा बना देते हैं, तुच्छ बना देते हैं ।

१. एकाग्रता : एकाग्रता एक अद्भुत शक्ति है । एकाग्रता सभी क्षेत्रों में सफलता की जननी है । यह आनन्द भी देगी, पढ़ाई में भी आगे बढ़ायेगी, यश भी देगी, भक्ति भी देगी, तत्त्वज्ञान में भी सहायता करेगी ।

तपःसु सर्वेषु एकाग्रता परं तपः ।

सभी प्रकार के तपों में एकाग्रतारूपी तप सर्वोपरि होता है ।

ताँबे अथवा काँसे की एक कटोरी में जल ले लिया । उसमें शिवलिंग रखकर आँखों की सीध में रख दिया । उसे एकटक निहारते रहे । इससे एकाग्रता बढ़ेगी, आँखों को ठंडक भी मिलेगी ।

सुबह नींद में से उठकर जहाँ बैठे हैं, वहीं छोटी उँगली (कनिष्ठिका) जमीन पर लगा दें कि 'हे पृथ्वी देवी ! मैं अचल परमात्मा में शांत हो रहा हूँ' अथवा श्वास अंदर जाये देखो, बाहर आये गिनती करो ।

घी के दीपक की ज्योति को, आकाश को, स्वस्तिक को, 'ॐ' को एकटक देखना भी एकाग्रता बढ़ाने में सहायक है ।

२. अनासक्ति : आसक्त होकर कर्म करने से फल-लोलुपता के कारण सूझबूझ दबी रहती है, कर्म में कम निखार आता है और प्रभाव नश्वर हो जाता है । अनासक्त होकर कर्म करने से कर्म में निखार आता है । आसक्ति को मिटाते जाओ । माँ की या बेटे की सेवा कर ली किंतु बदले में माँ कुछ दे या बेटा कुछ दे इस प्रकार किसीसे कुछ पाने की इच्छा से नहीं, अपना कर्तव्य निभाने के लिए सेवाभाव से सेवा अथवा प्रभु के नाते सेवा होनी चाहिए । यह अनासक्तियोग भी आपको भगवान के बल से एकाकार करा देगा ।

ज्यों-ज्यों उम्र बढ़े त्यों-त्यों अपनी आसक्ति कम होती जाय, ईश्वर में आते जायें । 'अरे, वह तो मर गया !' मर गया तो क्या नयी बात है ? जिसका जन्म हुआ है उसका मरना भी निश्चित है । यह जगत, शरीर और संसार कब तक ? सुख-दुःख को सत्य मानकर कब तक उलझना ? बुद्धि का सारतत्त्व के चिंतन में उपयोग करें । यह पाना है, ऐसा बनना है फिर क्या ? यह सब आखिर कब तक ? **ततः किं ततः किम् ?** श्री शंकराचार्यजी के 'गुर्वष्टकम्' को पढ़ें, उस पर विचार करें ।

वसिष्ठजी महाराज कहते हैं : ''हे रामजी ! जो दृष्टि में आये और फिर नश्वर हो, उसका शोक करना व्यर्थ है । जो मूढ़ हैं वे भोगों को देख के हर्षवान होते हैं और अधिक-से-अधिक चाहते हैं और बुद्धिमानों को उन भोगों से वैराग्य उपजता है ।

जो नष्ट हो, सो हो और जो प्राप्त हो, सो हो- उसमें हर्ष-शोक न करना । उसको यथाशास्त्र हर्ष-शोक से रहित भोगो और जो न प्राप्त हो

उसकी इच्छा न करो। यह अनासक्त पंडितों का लक्षण है।''

इच्छा की अपूर्ति में दुःख और पूर्ति में सुख होता है परंतु इच्छा की निवृत्ति में शांति मिलती है। शांति से भगवदीय सामर्थ्य सम्पन्न होता है।

३. संयम : शादी हो गयी तो पति-पत्नी का संबंध तो ठीक है लेकिन संयम से रहें, ब्रह्मचर्य का पालन दृढ़ता से करें ! स्वाद-लोलुपता में न फँसें। कृष्ण पक्ष की अष्टमी और पूर्णिमा को उपवास करें तो आयुष्य, आरोग्य और प्रभाव बढ़ता है।

४. श्रद्धा : श्रद्धा से हृदय रसमय, प्रेममय व ज्ञानमय हो जाता है। श्रद्धालु पत्थर की मूर्ति से अपने इष्ट को प्रकट कर सकता है।

उड़िया बाबाजी के प्रपितामह माँ काली की उपासना करते थे। एक बार वे काली मंत्र **'क्रीं'** जपते-जपते कृष्ण मंत्र **'क्लीं'** जपने लगे। गलती हुई तो माँ काली ने प्रकट होकर उनके मुँह पर ऐसा तमाचा मारा कि मुँह फिर गया। जीवन भर उनका मुँह टेढ़ा ही रहा, इलाज करवाने पर भी ठीक नहीं हुआ। तो देवियाँ भी हैं, देवता भी हैं, मंत्र हैं और मंत्रों का प्रभाव भी है। इन देवताओं को दृढ़ श्रद्धा के बल से ही प्रकट किया जा सकता है।

श्रद्धा रखो कि आप संसार में पचने, मरने के लिए नहीं आये। आप भगवान के अमृतपुत्र हैं और आप निगुरे नहीं हैं। गुरु का मंत्र आपके साथ है। फिर अपनी दुर्गति करानेवाले कर्म और विचार में क्यों गिरना ? आप चिंता क्यों करो ? आप भयभीत क्यों होओ ? जरा-सी बीमारी में धैर्य क्यों खोना ? 'बीमार शरीर होता है, चिंता मन में आती-जाती है। मैं उनको जाननेवाला परमात्मा का अमृतपुत्र हूँ।'- इस प्रकार श्रद्धा और एकाग्रता से रोज अभ्यास करो, जिससे आपका हलका अभ्यास चला जाय।

५. सच्चरित्रता : अपना चरित्र पवित्र रखो। दुर्गुण-दुराचार से सुखी होने का यत्न करने की गलती न करो।

कोई चाहे आपके लिए कैसा भी सोचे लेकिन आप गहराई में सोचें कि वह सच्चिदानंदस्वरूप है। आप सावधान भले रहें लेकिन सद्भावसंपन्न रहें।

अस्य स्तोमेभिरौशिज ऋजिश्वा
व्रजं दरयद्वृषभेण पिप्रोः।
सुत्वा यद्यजतो दीदयद्गीः
पुर इयानो अभि वर्पसा भूत्॥

'जब देवपूजक उपासक भगवान की स्तुति कर सद्गुणों से संपन्न हो जाता है, अपने शरीर को आत्मबल से अपने वश में कर लेता है, तब वह वशीभूत इन्द्रियोंवाला, तेजोमय प्रभु का उपासक होकर उस प्रभु के स्तुति-वचनों से ही सहज रूप से नित्य पालनीय इस शरीर के समूह अर्थात् इन्द्रियो का दलन करता है और शरीर के बन्धनों को तोड़कर मुक्त हो जाता है।'

अर्थात् संयमी व्यक्ति ही सच्चे अर्थों में परमात्मा का उपासक होता है। वही व्यक्ति अन्ततोगत्वा मोक्ष भी प्राप्त करता है।

(ऋग्वेद : मं.१० सू.९९ मंत्र ११)

ब्रह्मचर्य हेतु प्रार्थना

बृहस्पते अति यदर्यो
अर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात
तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्॥

'हे यज्ञजात बृहस्पति ! आर्यलोग जिस धन की पूजा करते हैं, जो दीति और यज्ञ वाला धन लोगों में शोभा पाता है तथा जो धन अपने ओज से प्रदीप्त है, वही विलक्षण तेजःशाली ब्रह्मचर्य-धन हमें दो।'

(ऋग्वेद : मं.२ सू.२३ मंत्र १५)

B2

सत्य का दिव्य प्रभाव

- पूज्य बापूजी

जो नित्य वस्तु होती है उसमें दूरी नहीं होती, दूरी अनित्य में होती है। अनित्य में बिछुड़न होती है, आपत्तियाँ और विपत्तियाँ होती हैं। नित्य में कोई आपत्ति-विपत्ति नहीं है। नित्य में आपत्ति-विपत्ति होती है क्या ? ये सारे बखेड़े जो दुःख के हैं न, अनित्य में ही हो रहे हैं। अनित्य, परिवर्तनशील प्रकृति में अशांति, झगड़े, कलह, राग-द्वेष, ईर्ष्या, यह-वह... सारे बखेड़े हैं, नित्य नारायण-साक्षी में कुछ नहीं।

यह सब बाहर के स्फुरणे में हो-हो के बदल रहा है, मिट रहा है। जैसे लहरों में, बुलबुलों में, झागों में उत्पात हो रहा है लेकिन पानी नित्यतत्त्व है। उसमें क्या हो रहा है ? कुछ नहीं। ऐसे ही परब्रह्म परमात्मा नित्यतत्त्व है। बड़ा सरल है, सहज है नित्यतत्त्व का ज्ञान। **सोऽहम्... वासुदेवः सर्वम्...** क्या जोर पड़ता है इसे समझने में ? जैसे, सपना आत्मसत्ता से आया; सपने में बाहर से वस्तुएँ आयीं क्या ? नहीं, वह आत्मसत्ता ही सपने की वस्तुएँ बन गयी।

सपने में जो पेड़ दिखते हैं वे बाहर से अंदर ले जाते हैं क्या ? अथवा पेड़ों की दुनिया में मन जाता है ? चैतन्य की सत्ता से ही पेड़-पौधे, नदी-नाले उभर आते हैं।

स्वप्नद्रष्टा नित्य है, स्वप्न की वस्तु अनित्य है। ऐसे ही यह जाग्रत का द्रष्टा नित्य है, जाग्रत की वस्तु अनित्य है। बुद्धि में यह बिठा दें तो बहुत ऊँची साधना हो जायेगी। शारीरिक श्रम, प्राणनिरोध की साधना, मानसिक साधना से भी यह एकदम ऊँची बात है। लेकिन फिर बुद्धि से असाधन करते हैं न, चोरी, बेईमानी, रिश्वत, कपट आदि तो साधन थोड़ा करते हैं और असाधन ज्यादा हो जाता है। इसीलिए इतना ऊँचा ज्ञान भी टिकता नहीं है। नहीं तो काम बन जाय। साधन के साथ असाधन न होने दें।

एक रेलवे स्टेशन मास्टर आया और बाबाजी को बोला : ''महाराज ! उपदेश दीजिये।''

बाबाजी बोले : ''मानोगे तो नहीं, क्या उपदेश दें ?''

''नहीं महाराज ! आपकी आज्ञा मानेंगे।''

बाबाजी ने अपने शिष्य को कहा : ''इनको जरा अपने कल्याण का उपदेश दे दो।''

शिष्य ने कहा : ''महाराज ! मैं खुद फँसा हूँ माया में। अभी तो मुझे सत्यतत्त्व का पता नहीं है। एक फँसे हुए को दूसरा फँसा हुआ कैसे छुड़ायेगा ? बँधा हुआ व्यक्ति किसको छुड़ाये ? आप ही कृपा करें।''

बाबाजी ने कहा : ''स्टेशन मास्टर ! उपदेश मानेगा ?''

''हाँ।''

''आज से तीन महीने तक झूठ मत बोलना, सत्य पर रहना। केवल तीन महीने... करेगा ?''

''हाँ महाराज !''- स्टेशन मास्टर वचन दे के चला गया।

वहाँ स्टेशन में अधिकारी, बाबू लोग, टिकटवाले, ये-वे... सब घूस लेते थे, खूब भ्रष्टाचार होता था। उसी सप्ताह वहाँ जाँच आयोग आया। स्टेशन मास्टर ने कहा : ''भाई ! यहाँ ऐसा-ऐसा होता है। ये ऐसा करते हैं, वे ऐसा करते हैं।'' सब सच-सच बोल दिया।

स्टेशन मास्टर के साथ-साथ कार्यालय के

बारह आदमियों पर मुकदमा चला । सबको जेल जाने की तैयारी करने की नौबत आनेवाली थी। उन बारहों ने वकीलों के साथ मिलकर ऐसी युक्ति खोजी कि 'रिश्वत स्टेशन मास्टर ने ली है, यह कार्य इन्होंने किया है, हमारा तो केवल नाम है। हमने इनके दबाव में आकर ऐसा किया है और हमने पैसा भी नहीं लिया है। सब इनको दे दिया।' ऐसी सबने झूठी गवाही दी।

स्टेशन मास्टर ने महाराज को वचन दिया था तीन महीने तक सत्य पर अडिग रहने का लेकिन छब्बीसवें दिन तो स्टेशन मास्टर जेल में ! उसकी नौकरी स्थगित हो गयी। विरोध हुआ तो पत्नी और पुत्र ने भी उसको डाँटा कि 'यह सत्य-सत्य बोलकर आप क्या कर रहे हो ?'

स्टेशन मास्टर बोला : ''सत्य ईश्वर है । उसे मैंने नहीं छोड़ा । सत्य सदा है, असत्य बदलता है।''

उन्होंने कहा : ''पकड़े रहो तुम्हारे सत्य ईश्वर को, जाओ जेल । हम तुम्हारा त्याग करते हैं।''

न्यायालय में मुकदमा चला, सुनवायी हुई। स्टेशन मास्टर के सत्य में दम था। न्यायाधीश ने पूछा : ''तुम्हारा वकील कहाँ है ?''

स्टेशन मास्टर : ''मेरे को कोई वकील नहीं चाहिए । जो सच्ची बात है वह मैं स्वयं बता देता हूँ। मुझे अपना कोई बचाव नहीं करना है।'' और उसने सारी बात दोहरा दी।

न्यायाधीश समझ गये कि बंदा है तो सच्चा। न्यायाधीश बोले : ''तुम सत्य बोलते हो यह हम कैसे मानें ?''

''मुझे एक महात्मा मिले थे। मैंने उन्हें उपदेश देने के लिए प्रार्थना की । उन्होंने कहा, 'तीन महीने केवल सत्य पर रहना।' उसके बाद छब्बीसवें दिन तो इतना बखेड़ा हो गया। फिर भी हम तो टिके हैं, चाहे मर जायें तो मर जायें लेकिन सत्यस्वरूप ईश्वर के लिए मरेंगे।'' उसने पूरी बात बता दी।

न्यायाधीश विस्मय में पड़ गये ! बाद में उन्होंने उसे अपने अलग कक्ष में बुलाया। पूछा :

''वे महात्मा कौन थे ?''

स्टेशन मास्टर ने महात्मा का नाम बताया। न्यायाधीश बोले : ''उनको हम भी मानते हैं। ये (कार्यालय के लोग) सब हरामी मिलकर खुद छूटने के लिए तुमको फँसा रहे हैं पर तुम्हारी बात मेरा हृदय स्वीकार करता है।''

उसको बरी कर दिया गया। स्टेशन मास्टर ने निश्चय किया, 'अब नौकरी पर नहीं लगना, अब तो सत्य पर चलते हैं।'

इतने में पत्र आया, 'तुम्हारी पुरानी जमीन जो फलाने देहात में है, जिसे सरकार ने ले लिया था, उसका मुआवजा दस लाख रुपये ले जाओ।'

वे दस लाख रुपये उसने पत्नी-पुत्र को दे दिये । फिर बच्चे और पत्नी बोलने लगे : ''अब आप हमारे साथ ही रहो।''

उसने कहा : ''अभी तक मैंने यह देखा कि तीन महीने के सत्यभाषण का क्या परिणाम होता है। अब मैं यह देखना चाहता हूँ कि आजीवन सत्य-पथ पर आरूढ़ रहने पर क्या परिणाम होता है ?''

और वे चल पड़े सत्य के पथ पर । अपने शरीर को घिस-पिट के जो अनित्य को सच्चा मानते हैं उन्हें अनित्य वस्तुओं में रखो तो खुश होकर बोलेंगे : ''आप हमारे हैं!'' और जब आपके द्वारा उन्हें अनित्य चीजें नहीं मिलेंगी तो फिर बोलेंगे : ''आपका हमारे साथ नहीं पटेगा।''

कौन किसका है ? झूठी माया का झूठा संबंध, झूठा पसारा है । वे स्टेशन मास्टर फिर बड़े उच्चकोटि के अनुभवी संत हो गये। केवल तीन

महीने तक असाधन न करने का संकल्प लिया था । सत्य बोलना साधन है और असत्य बोलना असाधन है । माला तो करते हैं किंतु 'ऐसी सेटिंग करूँ, यह करूँ-वह करूँ, झूठ करूँ, कपट करूँ, बेईमानी करूँ' - ऐसा असाधनयुक्त चिंतन भी साथ में चलता रहता है । इसीलिए उन्नति में पूर्णता नहीं होती । सत्य में टिक जायें बस ! 'यह बुरा है, फलाना ऐसा है, ऐसा क्यों ?' - संसार है, सपना है, सब बीत रहा है । जब अपना शरीर अपना नहीं तो उसका शरीर अपना कैसे और उसकी गलती अपनी गलती कैसे ? यह ऐसा है, वह ऐसा है... नहीं । ॐ... एक सत्य ही सार है । उसीकी विजय होती है । **सत्यमेव जयते ।**

सत्य ही जीवन का परम लक्ष्य है । मन, वाणी तथा कर्म से इसका अभ्यास किया जाय तो इस लक्ष्य तक सुगमता से पहुँचा जा सकता है ।

सत्य नित्य है, मिथ्या अनित्य है - परिवर्तित होता रहता है और सत्य के आधार पर ही मिथ्या बदलता है । बचपन मिथ्या था, बचपन को जाननेवाला सत्य अभी है । दुःख मिथ्या था परंतु दुःख को जाननेवाला सत्य अभी है । सुख मिथ्या था शादी का, पार्टी का लेकिन सुख की वृत्ति हुई थी उसको जाननेवाला मैं नित्य हूँ। उस सत्यस्वरूप परमात्मा में और हममें दूरी नहीं है । वह पूरा मिला-मिलाया है ।

सत्य लक्ष्य की प्राप्ति असत्य भाषण न करने तथा अपनी अंतर्चेतना के प्रतिकूल कर्मों के न करने से संभव है ।

*

सद्भावना का विकास करें

हमारे अंतर्जगत का निर्माण करनेवाली दो वृत्तियाँ हैं : सद्भावना तथा दुर्भावना । जीवन में हरेक वस्तु, व्यक्ति, संबंध एवं परिस्थिति को देखने-समझने के ये दो विभिन्न मार्ग हैं । दुर्भावना का मार्ग कंटकों से परिपूर्ण है । इस रास्ते पर चलनेवाले को सदा अतृप्ति और अशांति का एहसास होता है । वह ईर्ष्या, प्रतिशोध, संघर्ष तथा हिंसा की वृत्तियों में उलझा रहता है, दूसरों पर अविश्वास और शंका करता है, सबको अपना शत्रु समझता है, हितैषी भी उसे अपनी उन्नति के मार्ग में अवरोधक दिखायी देता है । उसके दुर्भावनायुक्त विचार दुःखों की सृष्टि कर उसके मन को नारकीय स्थिति में धकेल देते हैं ।

भगवान श्रीकृष्ण ने ऐसे मनुष्यों को आसुरी स्वभाववाला कहा है :

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥

'वे (आसुरी स्वभाववाले) अहंकार, बल, घमंड, कामना और क्रोधादि के परायण तथा दूसरों की निंदा करनेवाले पुरुष अपने व दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अंतर्यामी से द्वेष करनेवाले होते हैं ।'

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥

'उन द्वेष करनेवाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमों को मैं संसार में बार-बार आसुरी योनियों में ही डालता हूँ ।' (भगवद्गीता : १६.१८-१९)

दूसरा मार्ग सद्भावना का है । यह मनुष्य के इहलोक और परलोक दोनों को सँवारनेवाला मार्ग है, सभी क्षेत्रों में सफलता के शिखर पर विराजमान करनेवाला मार्ग

है । इस पथ पर चलनेवाला पथिक प्रत्येक व्यक्ति को आत्मरूप देखता है, सबसे स्नेह करता है और सबकी उन्नति में सहायक बनता है । वह प्राणिमात्र को प्रेम, सेवा, सहायता आदि प्रदान करता है । संसार के समग्र प्राणियों के प्रति आत्मभाव रखने से उसकी मनःस्थिति स्वाभाविक ही शांत और संतुलित रहती है । उसके मन-बुद्धि में व्यर्थ के संघर्ष, प्रतिहिंसा, ईर्ष्या-द्वेष, छिद्रान्वेषण, परनिंदा, स्वार्थ एवं वासना युक्त विचारों का तांडव नहीं होता । सर्वात्मभाव, त्याग और सेवाभाव उसके संकल्पों को दृढ़ता प्रदान करते हैं । वह परोपकार के आनंद से परितृप्त रहता है । एक अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति उसके अंतर्मन में संचित होती रहती है । सद्भावना सदैव फलित होनेवाली जादुई शक्ति है । जो जितनी सद्भावना दूसरों के लिए रखता है, वह उससे कई गुनी सद्भावनाएँ बदले में पाता है । सद्भावना कभी व्यर्थ नहीं जाती । सद्भावनाएँ गुप्त रूप से दूसरों को हमारी ओर आकृष्ट करती हैं । यदि दूसरा आकृष्ट न भी हो तो ये स्वयं हमें अमिट शांति, धैर्य और साहस प्रदान करती हैं । ये संकुचितता से बचाकर उदार बनाती हैं और अंततः कल्याण का कारण बनती हैं ।

रामायण में प्रभु श्रीरामजी सद्भावना के प्रतीक हैं तो रावण दुर्भावना का, शबरी सद्भावना से पूर्ण है तो शूर्पणखा दुर्भावना से ग्रस्त, 'श्रीमद्भागवत' में भगवान श्रीकृष्ण सद्भावना से पूर्ण हैं तो कंस दुर्भावना से, 'महाभारत' में युधिष्ठिर आदि पांडव सद्भावना से पूर्ण हैं तो दुर्योधन आदि कौरव दुर्भावना से । परिणाम आप जानते ही हैं । कहा भी है :

शक्कर खिला शक्कर मिले, टक्कर खिला टक्कर मिले ।
नेकी का बदला नेक है, बदों को बदी देख ले ॥
इसे तू दुनिया मत समझ, यह सागर की मझधार है ।
औरों का बेड़ा पार कर, तो तेरा बेड़ा पार है ॥

अतः हमेशा अपने भीतर सबके प्रति सद्भावना रखकर अपने और दूसरों के जीवन को सुख-शांतिमय व आनंदमय बनायें । सबका हित, सबका सुख, सबका कल्याण ही हमारा जीवन-दर्शन होना चाहिए । मंत्रद्रष्टा ऋषि ने इसी सत्य की प्रेरणा देते हुए कहा है :

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

'सभी सुखी हों, सभी नीरोगी रहें, सभी सबका मंगल देखें और किसीको भी दुःख की प्राप्ति न हो ।'

'गधे' को जाना, अब 'राम' को जानो

तमस् प्रधान जो वृत्ति है, हलकी बात जल्दी पकड़ लेती है । हम लोगों का मन हलका है इसलिए हलकी बात जल्दी पकड़ लेता है । जैसे - गाली जितनी याद रहती है न, उतनी प्रभु की बात, प्रभु का नाम याद रहे तो बेड़ा पार हो जाय । कुछ जड़बुद्धि लोग कहते हैं, 'प्रभु का नाम तो हम जानते हैं, कोई नयी बात बताओ ।' जैसे 'गधे' शब्द को आप जानते हैं, ऐसे 'राम' शब्द को नहीं जानते । कोई आपको 'गधा' बोल दे तो उस शब्द को सुनकर जैसे आप परेशान हो जाते हैं, ऐसे ही 'राम' शब्द को सुनकर आपका रोम-रोम आनंदित हो जाना चाहिए । तभी आपने राम-नाम को कुछ जाना ।

उस विशुद्ध परमात्म-तत्त्व के अमृत के प्याले पीये बिना यह जीव रह नहीं सकता । जब तक इसको सच्चा सुख नहीं मिले तब तक यह कहीं रुक नहीं सकता । दुनिया का सब वैभव इसके पास आ जाय फिर भी इसको कुछ खोट (कमी) का अनुभव होगा । दुनिया भर की सत्ता मिल जाय फिर भी कुछ-न-कुछ भय इसको रहेगा कि वह चली न जाय, और बढ़ती रहे । दुनिया भर का वैभव, सौंदर्य मिल जाय लेकिन रामरस जब तक नहीं मिला, तब तक जीव का दुर्भाग्य चालू रहेगा ।

आध्यात्मिक प्रयोगशाला है गुरु का द्वार

- पूज्य बापूजी

भगवान कहते हैं : **ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।** (गीता : १५.७) जीव में शिवत्व बीजरूप में निहित है। इस बीज को योग्य वातावरण मिलने पर यह अंकुरित हो जाता है और क्रमशः विशाल वृक्ष बन जाता है। वामन जीव में क्या विराट शिव विद्यमान है ? बड़ के एक छोटे-से बीज में क्या विशाल वटवृक्ष नहीं छुपा है ? अभी तो बड़ का बीज फूँक मारने से उड़ जायेगा, चुल्लू भर पानी में बह जायेगा परंतु इसी बीज को सुयोग्य जमीन में बोकर खाद, पानी दे के रक्षा की जाय तो यह वटवृक्ष बन जाता है। फिर यह तूफानों के सामने भी अडिग रहता है; पथिकों, पक्षियों का आश्रयस्थान बन जाता है।

नये-नये साधकों की स्थिति गर्भवती स्त्री के समान होती है। शिशु को जन्म देनेवाली माँ अपने उदरस्थ लाल को सँभालने के लिए कैसा ध्यान रखती है ! खान-पान, आचार-व्यवहार पर नियंत्रण रखती है। कहीं उदरस्थ बीज को हानि न पहुँच जाय ! तुममें भी चैतन्य का दैवी बीज बोया हुआ है। उसकी ध्यान से रक्षा करें। जैसे जमीन में बोये बीज को चींटियाँ खा न जायें, पक्षी चुग न लें, अंकुर से पत्ते आने के बाद बकरी उसे चबा न जाय - इसका ध्यान रखा जाता है, ऐसे ही साधक भी अपने दैवी बीज की रक्षा में सतर्क रहें। असाधक का संग न करें। आहार-विहार शुद्ध रखें। काम, क्रोध से बचें। अनावश्यक बोलना और दुनिया के पचड़ों में उलझना बिल्कुल छोड़ दें।

संयम के द्वार खोल दोगे, छननी जैसे हो जाओगे तो यह अमृत टिकेगा नहीं। अभी उसका ख्याल नहीं आयेगा पर जब अवसर चूक जाओगे, यह अमृत मिलना बंद हो जायेगा तथा पंछी के समान मुक्त स्वभाववाले संत-फकीर अपने देश चले जायेंगे फिर पता चलेगा और तब पश्चात्ताप के पत्थर के सिवा हाथ में कुछ नहीं आयेगा। अतः हाथ में आये हुए वर्तमान को पहचानो, पूरा लाभ लो। गंगा बहती है तब तक गोता लगा दो। जिन्हें इस चीज की समझ है, कद्र है वे तो प्राप्तव्य (परम पद) प्राप्त कर लेंगे, बाकी के हाथ मलते रह जायेंगे।

ज्यों-ज्यों संत की कृपा हजम करते जाओगे, त्यों-त्यों मधुरता के द्वार खुलते जायेंगे। मधुरता का खजाना तो प्रत्येक मनुष्य के भीतर भरा है परंतु उसके द्वार बंद हैं और चाबियाँ गुम हो गयी हैं। यहाँ सभी तालों को चाबी लगायी जाती है। कुछ विचित्र तालों को हथौड़े से चोट भी मारनी पड़ती है। यह आध्यात्मिक प्रयोगशाला है। आश्रम के मौनमंदिर में साधक के भीतरी खजाने के तालों की तोड़-फोड़ की जाती है।

तुम्हारी छुपी हुई संभावनाओं को जान लो, पहचान लो, तब उसकी रक्षा करने की रुचि जग जायेगी। इस कार्य में बोझ नहीं अपितु रस के घूँट भरने जैसा लगेगा। गुरु की कृपा से बीज में अंकुर तो आ जाते हैं परंतु साधक यदि सँभाल न ले तो मेहनत व्यर्थ जाती है। महिला को तो हाड़-मांस की देह को जन्म देना है, जबकि साधक को तो ईश्वर को जन्म देना है। तो हिसाब करो, कितना अधिक ध्यान रखने की आवश्यकता है !

आहार, विहार और व्यवहार शुद्ध रखो। शुद्ध और सात्त्विक व्यक्तियों का ही संग करो। अन्य लोगों का संपर्क, हो सके उतना टालो। तुम्हारे से जो लोग आध्यात्मिकता में निम्न हों,

उनसे बचो । किसीसे घृणा न करो परंतु तुम्हारी साधना की रक्षा करो । सभी जीवों के प्रति भीतर से प्रेम रखो परंतु उनके कुसंस्कारों का पाश तुम्हें न लगे इतना दूर रहो । सजातीय (अपने लक्ष्य के अनुकूल) संग करके तुम्हारे व्यक्तित्व में सजातीय प्रवाह विकसित करो । अफसर और चपरासी दोनों मनुष्य ही हैं परंतु दोनों के विकास में अंतर है, दोनों की योग्यता अलग है । दोनों को एक ही श्रेणी में नहीं रखा जा सकता । तुम भी तुम्हारी श्रेणीवाले लोगों के साथ उठो, बैठो, व्यवहार करो । श्रद्धालुओं का संग करो । यदि तुम सावधान नहीं रहे तो साधना तोड़ने का प्रयास चारों ओर से होगा । नन्हा दीया हवा के झोंकों से बुझ जायेगा । निंदाखोर निंदा करेंगे, व्यवहार-चतुर कर्तव्यों का ढेर तुम्हारे आगे खड़ा कर देंगे । इन सबसे बच जाओगे तो सद्गुरु की ओर से कसौटी के थपेड़ों से विचलित हो जाओगे । गुरु की फटकार सहन नहीं होगी तब भी नापास हो जाओगे । भाई ! गुरु की सभी कसौटियों से सही-सलामत बाहर निकलनेवाले तो विरले ही होते हैं । शिल्पी के सभी प्रहार जो पत्थर सहता है वही सुंदर मूर्तिरूप बनता है । तुमने क्या अच्छा किया इस ओर ध्यान न देकर तुमसे गलती कहाँ हो रही है, उसे पकड़कर दूर करने में ही गुरु तत्पर रहते हैं ।

भाई ! यह तो अध्यात्म का मार्ग है । गली-कूचे आते रहेंगे, केवल महामार्ग ही नहीं आयेगा । मन साधक को कैसे धोखा देगा कुछ कह नहीं सकते । साधक तो समझता है कि मैं शास्त्र और गुरु के उपदेश अनुसार चलता हूँ परंतु वास्तव में कई बार तो मन ही सारा सूत्र-संचालन कर रहा होता है । उपदेशों का अर्थघटन अपने अनुकूल करके मन साधक को उल्लू बनाता है ।

सद्गुरु तो समर्थ हैं। वे गली-कूचे में भटकानेवाले मन को फटका लगाकर साधक को मार्ग बताते हैं। साधक में भी हिम्मत होनी आवश्यक है । चाहे कैसे भी फटके सहकर भी तत्त्व को जान ले । फटके सहने पड़ें फिर भी गुरु का सान्निध्य नहीं छोड़े । मान-अपमान, निंदा-स्तुति की परवाह किये बिना सद्गुरु की आज्ञा अनुसार चलता रहे तो फिर मंजिल दूर नहीं है । सद्गुरु उसे उस पद पर पहुँचा देंगे, जहाँ वे स्वयं स्थित हैं । वह पद ऐसा है कि जहाँ सुख-दुःख का स्पर्श नहीं हो सकता, जहाँ आनंद-ही-आनंद है ।

ॐ आनंद ! ॐ आनंद !! ॐ आनंद !!!

*

मुझे सद्गुरु द्वार पे जाना है

मुझे सद्गुरु द्वार पे जाना है,
मन-मंदिर को महकाना है,
श्रद्धा भक्ति प्रभुप्रीति से
निज ज्ञान का अलख जगाना है ।

गुरुचरणों में शीश झुकाना है,
भय भेद भरम मिटाना है,
श्वासों की अद्भुत माला में
गुरुनाम के मोती पिरोना है ।

जीवभाव तम अहं गँवाना है,
समता सुमति सद्गति पाना है,
पावन हरिनाम की रंगत से
चित् चितवन को रँगाना है ।

हरिनाम से नेह लगाना है,
परब्रह्म तत्त्व को पाना है,
आत्मरति तृप्ति पराशक्ति से
निज शाश्वत सुख पाना है ।

हरिनाम रामगुण गाना है,
परम शांति आत्मसुख पाना है,
साक्षी निज आनंद रस से
लोभ मोह विषाद मिटाना है ।

मुझे अपने आपमें आना है,
घट-घट हरिदर्शन पाना है,
शिवोऽहम् नाम के गुंजन से
फकीरी मस्ती में खो जाना है ।

– जानकी ए. चंदनानी

मौत की मौत

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्षणशः
स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं
भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥

'भक्तजन बार-बार आपके चरित्र का श्रवण, गान, कीर्तन एवं स्मरण करके आनन्दित होते रहते हैं। वे ही अविलम्ब आपके उस चरणकमल का दर्शन कर पाते हैं, जो जन्म-मृत्यु के प्रवाह को सदा के लिए रोक देता है।'

(श्रीमद्भागवत : १.८.३६)

भगवान के प्रेमी भक्तों को न जीने की वासना होती है, न मौत से भय होता है क्योंकि भक्ति माता की कृपा प्राप्त कर वे भगवान के अविनाशी स्वभाव से अविभक्त रहते हैं अर्थात् उसमें एकाकार रहते हैं। जन्म-मृत्युरूप संसार के प्रवाह को वे सदा-सदा के लिए लाँघ जाते हैं। ऐसे भक्तों के रक्षक भगवान स्वयं होते हैं। उन पर मौत का अधिकार नहीं होता। अनधिकार चेष्टा करने पर मौत की भी मौत हो जाती है।

'ब्रह्म पुराण' में ब्रह्माजी देवर्षि नारदजी को भगवन्नाम व भगवद्भक्ति की महिमा उजागर करनेवाला एक आख्यान सुनाते हैं। जिसके श्रवणमात्र से पापनाश होकर अंतःकरण शुद्ध हो जाता है। गोदावरी नदी के तट पर श्वेत नामक एक ब्राह्मण रहते थे। उनका समय निरन्तर भगवान शिव की पूजा, लीला-श्रवण, नाम-कीर्तन, स्मरण में व्यतीत होता था। वे जीवमात्र को शिवस्वरूप जानकर उनकी भलीभाँति सेवा किया करते।

इस प्रकार उनकी सम्पूर्ण आयु भगवद्-आराधन में व्यतीत हुई। आयु पूरी होने पर यमदूत उन्हें लेने आये परंतु वे उनके घर में प्रवेश नहीं कर पाये। जब मृत्यु का समय बीत गया तब चित्रगुप्त ने मृत्युदेव से पूछा : ''मृत्युदेव ! श्वेत ब्राह्मण अब तक यहाँ क्यों नहीं आये ? और तुम्हारे दूत भी नहीं आये !''

यह सुनकर मृत्युदेव को श्वेतजी पर बहुत क्रोध आया। वे स्वयं ही श्वेतजी को लेने के लिए निकल पड़े। उन्हें श्वेतजी के द्वार पर यमदूत भय से काँपते दिखायी पड़े।

उन्होंने मृत्युदेव से कहा : ''नाथ ! हम क्या करें, श्वेतजी तो भगवान शिव द्वारा सुरक्षित हैं। उन्हें तो हम देख भी नहीं पा रहे हैं, पास पहुँचना तो दूर की बात है।''

दूतों की बात सुनकर मृत्युदेव का क्रोध और भभक उठा। वे श्वेतजी के घर में प्रवेश कर गये। श्वेतजी शिव-पूजन में तल्लीन थे।

मृत्युदेव को श्वेतजी की ओर आते देखकर भगवान शिव के एक गण भैरव ने कहा : ''मृत्युदेव ! आप यहाँ से लौट जाइये।''

किंतु मृत्युदेव ने श्वेतजी पर फंदा डाल ही दिया। भक्त पर मृत्यु का यह आक्रमण भैरव को सहन न हुआ। उन्होंने शिवजी के दिये हुए दंड से मृत्यु पर गहरा प्रहार किया। मृत्युदेव वहीं ढेर हो गये। यमदूत भागकर यमराज के पास पहुँचे। वे डर से काँप रहे थे। मृत्यु की मृत्यु का समाचार सुनकर यमराज हाथ में यमदंड लिये अपनी सेना के साथ उस स्थान पर पहुँचे जहाँ श्वेतजी भगवान की आराधना में तल्लीन बैठे थे।

वहाँ भगवान शिव के पार्षद पहले से ही खड़े थे। सेनापति कार्तिकेय के शक्ति-अस्त्र से सेनासहित यमराज की भी मृत्यु हो गयी। यह अपूर्व समाचार सुनकर भगवान सूर्य देवताओं के

साथ भगवान ब्रह्माजी के पास पहुँचे और ब्रह्माजी सबके साथ घटनास्थल पर आये । देवताओं ने भगवान भोलेनाथ की स्तुति की और कहा :

''भगवन् ! यमराज सूर्यदेव के पुत्र हैं । ये लोकपाल हैं, अपराधी या पापी नहीं हैं । इनका वध नहीं होना चाहिए । इन्हें इनकी सेनासहित जीवित कर दें, नहीं तो अव्यवस्था हो जायेगी । नाथ ! महात्माओं से की हुई प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं होती ।''

शिवजी ने कहा : ''मैं भी व्यवस्था के पक्ष में हूँ परंतु जो मेरे या भगवान विष्णु के भक्त हैं उनके स्वामी स्वयं हम लोग होते हैं । मृत्यु का उन पर कोई अधिकार नहीं है । यमराज को चाहिए कि अपने अनुचरोंसहित उन्हें प्रणाम करें ।''

इसके बाद भगवान आशुतोष ने नंदी के द्वारा गौतमी गंगा (गोदावरी) का जल मृत शरीरों पर छिड़कवाया । तत्क्षण सब-के-सब स्वस्थ होकर उठ खड़े हुए । जहाँ मृत्युदेव मरकर गिरे थे वह स्थान तबसे 'मृत्युतीर्थ' कहलाया ।

स्वयं यमराज ने भगवान से हाथ जोड़कर क्षमा माँगी और अपने दूतों को भगवन्नाम, भगवद्भक्ति व भक्तों की महिमा बताते हुए कहा :

गोविन्द माधव मुकुन्द हरे मुरारे
शम्भो शिवेश शशिशेखर शूलपाणे ।
दामोदराच्युत जनार्दन वासुदेव
त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति ॥

'हे गोविन्द, माधव, मुकुन्द, हरे, मुरारे, शम्भो, शिव, ईश, चन्द्रशेखर, शूलपाणि, दामोदर, अच्युत, जनार्दन, वासुदेव ! - इस प्रकार जो लोग सदा उच्चारण-मनन करते रहते हैं, उनको मेरे प्रिय दूतो ! तुम दूर से ही त्याग देना ।'

जो जीव भगवन्नाम व भगवद्भक्ति से विमुख हैं उन्हें ही यमपुरी में लाया करो ।

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥

'जिनकी जीभ भगवान के गुणों व नामों का उच्चारण नहीं करती, जिनका चित्त उनके चरणारविन्दों का चिन्तन नहीं करता और जिनका सिर एक बार भी भगवच्चरणों में नहीं झुका, उन भगवत्सेवा-विमुख पापियों को ही मेरे पास लाया करो ।'

भगवान के भक्तों को मौत का साया भी छू नहीं सकता । मनुष्यमात्र को चाहिए कि बार-बार जन्म-मरण के चक्र में धकेलनेवाले विषय-विकारों, छल-छिद्र, कपट छोड़कर संतों व सच्चे भगवद्भक्तों के संग प्रीतिपूर्वक भगवत्परायण हो जायें ।

*

घर में टूटी-फूटी अथवा अग्नि से जली हुई प्रतिमा की पूजा नहीं करनी चाहिए । ऐसी मूर्ति की पूजा करने से गृहस्वामी के मन में उद्वेग या अनिष्ट होता है । (वराह पुराण : १८६.४३)

***

सूर्य से आरोग्य की, अग्नि से श्री की, शिव से ज्ञान की, विष्णु से मोक्ष की, दुर्गा आदि से रक्षा की, भैरव आदि से कठिनाइयों से पार पाने की, सरस्वती से विद्या के तत्त्व की, लक्ष्मी से ऐश्वर्य-वृद्धि की, पार्वती से सौभाग्य की, शची से मंगलवृद्धि की, स्कन्द से सन्तानवृद्धि की और गणेश से सभी वस्तुओं की इच्छा (याचना) करनी चाहिए । (लौगाक्षि स्मृति)

अपनेको जानोगे तो अपने आपमें तृप्त हो जाओगे

- पूज्य बापूजी

एक होता है सीखना और दूसरा होता है जानना। सीखना वह होता है जो हमारे पास पहले से नहीं है, कुछ करें और जानें। जानना वह होता है जो पहले से मौजूद है, केवल जानना है। सीखना होता है प्रकृति की चीजों में और जानना होता है अपने एवं परमात्मा के स्वरूप को। जानने का फल शाश्वत है, सीखने का फल नश्वर है। अतः 'मैं कौन हूँ ?' इसको जान लें।

कभी ऐसा सोचा है कि 'मैं नहीं हूँ।' 'फलाना था कि नहीं ? वह है कि नहीं ? स्वर्ग है कि नहीं ? नरक है कि नहीं ? फलाना देश है कि नहीं ?'- यह प्रश्न मन में हो सकता है पर 'मैं हूँ कि नहीं ?' ऐसा प्रश्न कभी होता है क्या ? दुःखाकार वृत्ति से जुड़े तो 'मैं दुःखी हूँ', सुखाकार वृत्ति से जुड़े तो 'मैं सुखी हूँ।' जातिगत वृत्ति से जुड़े तो बोले, 'मैं अग्रवाल हूँ, मैं बनिया हूँ, मैं जाट हूँ।' तो 'मैं' है कि नहीं है ? है। अतः 'मैं कौन हूँ ?'- इसको जानना है।

'मैं' शाश्वत है। उसको जानने में परिश्रम क्या है ? सीखने में परिश्रम है और सीखा हुआ छूट जाता है क्योंकि प्रकृति का है। जाना हुआ 'स्व-तत्त्व' अछूट है। जो कभी नहीं छूटे उसको जान लेना है, हो गयी परमात्मप्राप्ति ! अपनेको जानो फिर दुःख तुमको नहीं दबायेगा, सुख और वासना तुमको नहीं दबायेगी, नरकों में जाने का सवाल ही पैदा नहीं होता है, स्वर्ग की कोई इच्छा ही नहीं रहेगी। तुम बहुत ऊँचे पद पर पहुँच जाओगे। उधर को नजर नहीं जाती, उधर का महत्त्व नहीं जानते, इसलिए सब सीखने और पाने में लगे हैं। अपने सिवाय जो भी पाओगे वह छूट जायेगा। अपने सिवाय जो भी जानोगे वह विस्मृति की खाई में पड़ जायेगा।

मन ! तू ज्योतिस्वरूप अपना मूल पिछान।

ज्ञान ही ज्योतिस्वरूप है। बीमारी को भी तू देखता है, निद्रा को भी तू जानता है, स्वप्न को भी तू जानता है। सपने के लोग तुझे नहीं जानते लेकिन सपने को तू जानता है। रोटी, दाल, यह-वह... कल जो भी बनाया-खाया, उसको तू जानता है, वे तुझे नहीं जानते। बोलो ! इसमें क्या कोई कठिनता है ?

अपनेको जानोगे तो अपने-आपमें तृप्त हो जाओगे। अपने-आपमें पूर्णता है, अपने-आपमें प्रसन्नता है, अपने-आपमें निःसंदेहता है।

देखा अपने आपको, मेरा दिल दीवाना हो गया।
ना छेड़ो मुझे यारों, मैं खुद पे मस्ताना हो गया॥

जब तक अपनेको नहीं जाना तब तक शरीर के, संसार के, इसके-उसके बारे में सीख-सीख के उलझते रहो। कोई सोचता है, 'मैं चिकित्सक बन जाऊँ...' कई चिकित्सक बेचारे उलझ-उलझकर थक जाते हैं, निराश होकर आते हैं इधर। कई वकील, कई उद्योगपति, कई बड़े-बड़े विद्वान भी दुनिया भर की बातें सीख लेते हैं परंतु अपने 'मैं' को नहीं जानते। बस, इतनी जरा-सी गलती के कारण जीवन कितना बोझ उठाने के बावजूद भी विफल हो जाता है !

सुख और शांति सभीकी माँग है। **सदाचार, सद्भाव और समझदारी- ये तीन चीजें होने से अपने-आपमें विश्रांति, परम शांति मिलेगी** तथा

अपने-आपको जान लोगे । इन आँखों से नहीं जानोगे, यह जो बुद्धि है उससे भी नहीं जानोगे बल्कि बुद्धि जिससे ज्ञान पाती है उसमें विश्रांति मिल जायेगी । ज्यों स्वयं को जानने जाओगे, त्यों... जैसे तरंग पानी को जानने जायेगी तो क्या होगा ? पानी में शांत... फिर तरंग बनकर नाचेगी फिर भी उसे पता है कि तरंग और पानी एक है । ऐसे ही आत्मा और परमात्मा की एकता का बोध हो जाता है, ज्ञान हो जाता है । बहुत ऊँची स्थिति है यह । अवतारों का ज्ञान, अवतारों के दर्शन, अवतारों से बातचीत होने के बाद भी यह काम बाकी रह जाता है । यह काम कर लिया तो सब काम पूरे हो गये ।

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय ।

सीखा हुआ पेट भरने के काम आता है और जाना हुआ सीखनेवालों को अपने-आप चमका देता है । श्री रमण महर्षि ने अपने-आपको जाना तो सीखनेवालों से बहुत आगे निकल गये । संत कबीरजी ने अपने-आपको जाना, महारानी मदालसा ने अपने-आपको जाना, संत रैदासजी ने अपने-आपको जाना, दूसरे कइयों ने जाना । जिन्होंने अपनेको जाना, लाखों-लाखों सीखनेवाले उनके अनुयायी हो गये, यह ऐसा उत्तम ज्ञान है । अपने-आपको जानो तो भगवान और आत्मा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं ।

*

एक नूर ते स[illegible] जग उपजा...

एक नूर ते सब जग उपजा,
कौन भले कौन मंदे ?

गुलाब का फूल खिल रहा है, सुंदर सुहावनी सुगंध दे रहा है । फूल को तो हमने प्यार किया लेकिन काँटों को देखकर मुँह सिकोड़ा; बुद्धिमान देखेगा कि जिसने फूलों को जीवन दिया है, क्या उसीने काँटों को जीवन नहीं दिया ? ऐसे ही जिसको बोध (आत्मज्ञान) हो जाता है उसके लिए शत्रु-मित्र, मान-अपमान, सुख-दुःख, लाभ-हानि सब एक ही सत्ता से सींची हुई इस सुवास फैलानेवाली विश्व-वाटिका के अंग हैं । उसके चित्त में क्षोभ नहीं होता, उसके चित्त में आनंद बरसता रहता है, जिस आनंद को पाकर वह तृप्त हो जाता है ।

'नारदभक्तिदर्शन' कहता है :

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति ।
अमृतो भवति तृप्तो भवति ॥
स तरति स तरति, स लोकांस्तारयति ॥

(सूत्र : ४ व ५०)

वह तो तरता है, औरों को भी तार लेता है ।

मनुष्य में यह शक्ति है कि वह जीवन की शाम होने के पहले जीवनदाता की मुलाकात कर सकता है किंतु इन वासनाओं के कारण, तुच्छ दुराग्रहों के कारण जन्म-मरण के चक्र में भटकता रहता है : 'नौकरी नहीं मिलेगी तो मर जाऊँगा, बीड़ी नहीं मिलेगी तो मर जाऊँगा, चाय नहीं मिलेगी तो मर जाऊँगा...' पर अपने-आपकी खबर नहीं मिली तो करोड़ों बार मर जायेगा इतना पक्का कर ले यार !

*

न यज्ञतीर्थैर्न तपःप्रदानै रासाद्यते तत्परमं पवित्रम् ।
आसाद्यते क्षीणभवामयानां भक्त्या सतामात्मविदां यदंग ॥

'जिनके (राग-द्वेषादि) सांसारिक रोग क्षीण हो गये हैं ऐसे जीवन्मुक्त संतों की भक्ति से जो परम पवित्र फल ज्ञान द्वारा प्राप्त होता है, वह न तो यज्ञों व तीर्थों से प्राप्त होता है और न ही तपस्याओं तथा दानों से प्राप्त होता है ।' **(योगवासिष्ठ निर्वाण प्रकरण पूर्वार्ध : सर्ग १२२ श्लोक १४)**

हे साधक ! तू दृढ़ निश्चय कर

- पूज्य बापूजी

ध्यान की गहराइयों में शिष्य को भीतर से सद्गुरु की वाणी सुनायी पड़ी :

हे शिष्य ! हे साधक ! तू भय, शोक, चिन्ताओं को छोड़ । आज से दृढ़ संकल्प कर कि 'मैं अन्दर के खजाने को खोलकर रहूँगा । मैं अपने खोये हुए साम्राज्य को पाकर रहूँगा । मैं अपने मित्र से, युगों से बिछुड़े हुए उस यार से मिलकर रहूँगा ।' यदि तू दृढ़ निश्चय करता है तो हवाएँ तेरे साथ हैं, प्रकृति तेरे साथ है, देवता तुझे सहयोग करेंगे । सद्गुरु लोग तुझे सहयोग करेंगे । तू केवल एक कदम उठा, नौ सौ निन्यानवे कदम वह परमात्मा उठाने को तैयार है । तू एक कदम आगे बढ़, हिम्मत कर, नौ सौ निन्यानवे कदम वह तेरे करीब आने को राजी है । इसलिए तू अपने संकल्प को महान बना । 'मैं आत्मज्ञान पाकर रहूँगा, मैं परमात्मा का साक्षात्कार करके ही रहूँगा । मेरा यह अमूल्य जीवन तुच्छ चीजों के लिए नहीं है । ईंट, चूना, लोहा, लक्कड़ बनाने या रखने के लिए नहीं है ।' ये तो साधारण चीजें हैं, छूटनेवाली हैं, तुझे अटूट परमात्मा को पाना है । दृढ़ संकल्प कर । आर्तभाव, कातरभाव से प्रार्थना करते-करते खो जा ! जिसका है उसीका हो जा । दृढ़ संकल्प... लेकिन अहंकार से नहीं, सद्भाव से । सत्स्वरूप ईश्वर की कृपा से तू अवश्य सफल होगा । ॐ...ॐ...हरि... हे कृपालु ! हे अंतर्यामी ! हे साहसदाता, शक्तिदाता, ॐ... ॐ... ॐ...

मेरा जो दिव्य स्वरूप है, वह सुखस्वरूप, साक्षीस्वरूप, ज्ञानस्वरूप है ।... नित्य नवीन प्रेमरस प्रदाता प्रभु में प्रीति, हरि-हरि, नारायण-नारायण, प्रेमस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, परम सुहृद ॐ... ॐ... प्रभु...

'मेरा मनुष्य-जीवन दिव्य सद्गुरुओं का ज्ञान पचाने के लिए है । परमात्मा को पहचाने हुए महापुरुषों की वाणी को सँभालने के लिए मेरा यह जीवन है ।'- जिन्होंने उस तत्त्व को सँभाला है, आत्मरस को सँभाला है उनके आगे दुनिया के रस तो पाले हुए कुत्ते की नाईं आते हैं । जो अपना साम्राज्य सँभाल लेता है, छोटी-छोटी पदवियाँ तो उसके चरणों तले आ जाती हैं ।

एक भिखारी था । ठोकरें खाता-खाता किसी नगर के पास जा पहुँचा । पहुँचने के समय ही नगर का द्वार बन्द हो गया था । ठंड में ठिठुर रहा था, भूख से करवटें ले रहा था । सारी रात करवटें लेता रहा ।

प्रभात को वहाँ के राजा की मृत्यु हो गयी । राज्य का यह पुराना प्रचलित नियम था कि एक हथिनी को पानी का कलश लेकर नगर में घुमाया जायेगा और वह जिस पर कलश ढोलेगी उसे राजा बना दिया जायेगा ।

हथिनी को सजाया गया, कलश दिया गया । हथिनी ने घूमते-घूमते द्वार के बाहर निकलते ही, जो रात भर ठिठुरा था, आज तक जो भिखारी था, जिसके पास पहनने के लिए कपड़ा न था, खाने के लिए अन्न न था, रहने के लिए घर न था, खर्चने के लिए धन न था ऐसे निर्धन व्यक्ति के ऊपर कलश ढोल दिया । कलश का पानी उस पर पड़ते ही वह सम्राट बन गया और उसने आज्ञा की : 'ले आओ नये वस्त्र, जल्दी करो ।'

एक हथिनी पानी का कलश ढोलती है तो

महादरिद्र व्यक्ति सम्राट हो सकता है, फिर सद्गुरु यदि अपनी कृपा का कलश ढोल दें तो जीवात्मा परमात्मा से मिल जाय, इसमें क्या आश्चर्य है ? सदियों का भूखा-प्यासा यह जीवात्मा आत्मरस से तृप्त हो जाय, स्वरूप में जग जाय इसमें क्या आश्चर्य है ? युगों का भटका यह जीव न जाने कितनी माताओं के पास, कितने पिताओं के पास, कितने मित्रों के पास सुख-शांति की भीख माँगता-माँगता युग बिताकर आया है बेचारा ! यह जीव न जाने कितनी-कितनी माताओं की कोखों में ९-९ महीने गर्भवास भोगकर, लटककर आया है। अब यदि सत्शास्त्र एवं सद्गुरुओं की कृपा का कलश इस पर ढुल जाय और भीतर का साम्राज्य, भीतर का खजाना हाथ लग जाय तो क्या आश्चर्य है ? हम पर भी उन ब्रह्मज्ञानियों के कलश का चित्त की प्रसन्नतारूपी कुछ प्रसाद छलक जाय।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

'अन्तःकरण की प्रसन्नता होने पर इसके सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है और इस प्रसन्न चित्तवाले कर्मयोगी की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर एक परमात्मा में ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है।' (गीता : २.६५)

निर्विषय प्रसन्नता जब आने लगे तो समझ लेना कि भगवान का कृपा-प्रसाद मिलना शुरू हो गया है। खाने को भोजन न हो, देखने को फिल्म न हो, सोने को सेज-शय्याएँ न हों, गप्पे लगाने को मित्र न हो और चुप बैठे तो हृदय में आनन्द आने लगे तब समझ लेना कि भगवद् कृपा-प्रसाद को अनजाने में ही जगह मिल गयी है। उसको बढ़ाते रहना। अकेले आये, अकेले जाना है। प्रभुध्यान, प्रभुप्रीति में खोते जाना... ॐ... ॐ... ॐ...

योगवासिष्ठ अमृत बिन्दु

* विवेकी पुरुष का मन ही अभिमत कार्य करने से चाकर है, उत्तम कार्य का सम्पादन करने से मन्त्री है और इन्द्रियों पर आक्रमण करने से सेनापति है, ऐसा मैं समझता हूँ। मनीषी पुरुषों का मन ही लालन (उपसेवन) करने से स्नेहयुक्त ललना है, पालन करने से पवित्र पिता है तथा उत्तम विश्वास के कारण मित्र है, ऐसा मैं समझता हूँ।

* मूढ़ की नाईं क्षुद्र फलों की प्रार्थना से व्यर्थ नहीं होना चाहिए किंतु मन में फल के तारतम्य का विचार कर सबसे उत्कृष्ट फल की प्राप्ति से सर्वोत्कृष्ट शुभ प्रयत्न से सुशोभित होना चाहिए। आत्मज्ञान सम्पूर्ण सुख-दुःख, जन्म-मरण आदि अवस्थाओं की भ्रमदृष्टियों का मूलोच्छेद करनेवाला है, इसलिए आत्मज्ञान में ही आपको शुभोद्योग का अभ्यास करना चाहिए।

* हे रामजी ! जो दुस्तर आपत्तियाँ हैं और जो अति नीच कुत्सित योनियाँ हैं वे सब, जैसे खदिर से काँटे उत्पन्न होते हैं वैसे ही मूर्खता से पैदा होती हैं। मिट्टी के पात्र को (सकोरे को) हाथ में लेकर चाण्डालों की टोली में भीख माँगने के लिए दर-दर घूमना अच्छा है पर मूर्खतापूर्ण जीवन अच्छा नहीं है। निर्जन स्थान में, अति भयानक अन्ध कूप में एवं पेड़ों के खोखलों में अन्धा कीड़ा होना अच्छा है पर अति दुःखदायी मूर्खता अच्छी नहीं है।

भक्ति करे कोई सूरमा

- पूज्य बापूजी

भगवान को पाने के लिए अपने अहं को मिटा देना पड़ता है। गोपियों ने भगवान के सामने अपने-आपको न्योछावर करके भाव के आँसू बहाये थे, तब उन्होंने भगवान को पाया था। 'लोग क्या कहेंगे'- ऐसी चिंता रखनेवाले भगवान से दूर ही रह जाते हैं। उन्हें भगवान से अधिक लोगों की परवाह है। वे भगवान को ठगने की कोशिश करते हैं। भगवान को पाना है तो लोगों की निंदा-स्तुति से मुँह मोड़ना पड़ता है।

स्वामी रामतीर्थ अमेरिका गये, तब यहाँ के लोगों ने उनके ऊपर बहुत ही कीचड़ उछाला, खूब निंदा की। जब वे परदेश से वापस आये तब उनके एक शिष्य ने उनको ये सारी बातें विस्तार से बतायीं। स्वामी रामतीर्थ कुछ भी बोले नहीं, निकट पड़ा हुआ अपना दंड उठाकर शिष्य को देने लगे। तब शिष्य ने कहा : ''यह आपका दंड है, आप रखें। मेरे पास मेरा दंड है।''

स्वामीजी ने दंड वापस रखते हुए कहा : ''मेरे पास मेरी मति है, मेरी बुद्धि है। लोगों की बातें, लोगों की निंदा-स्तुति लोगों के पास ही रहे। मुझे उनसे कोई प्रयोजन नहीं है। चाहे लोग मुझे मूर्ख कहें, चाहे पददलित कहें, चाहे कुछ भी कहें, मैं तो आत्मा हूँ। मुझे किसीका स्पर्श नहीं। मैं निर्लेप और असंग हूँ। लोगों की जीभ मधुर हो या तलवार जैसी कठोर, इससे मुझे कुछ होनेवाला नहीं है।''

लोगों की हाँ-में-हाँ मिलाना छोड़कर तुम ईश्वर के रास्ते पर आगे बढ़ते हो तो लोग अपमानित करें, पददलित कहें, मूर्ख कहें, विरोध करें फिर भी डर नहीं लगता। ब्रह्मज्ञानी संतों की ओर देखो। कैसे निर्भय हैं! दुनिया उलटी होकर टँग जाय तब भी अपनी आत्मनिष्ठा नहीं छोड़ते। वे कहेंगे : 'अंत में तो पाँच महाभूत ही न? उनमें तो परिवर्तन होता रहता है, इससे मुझे क्या? मैं तो द्रष्टा हूँ, सर्वत्र, शाश्वत हूँ। मेरे परम पद के किले से एक कंकड़ भी नहीं निकलनेवाला।'

देखो, कैसी निर्भयता है!

अतः लोगों को राजी करने के चक्कर में मत पड़ो। सब लोग तुम पर राजी हो जायें यह संभव नहीं है। तुम केवल ईश्वर को हृदय में सँभालो, हृदय को जलने मत दो, सदा प्रसन्न रहो, बाकी सब जल जाय तब भी परवाह नहीं है। ईश्वर के साथ तन्मयता हो जाय तो आत्मशांति तो मिल ही गयी और आत्मशांति से बढ़कर मानव-जीवन का दूसरा क्या उद्देश्य हो सकता है? आत्मा-परमात्मा को पाना यही परम पुरुषार्थ है।

संकल्प करें : 'मेरा कोई विरोध करे तो मैं दुःखी नहीं होऊँगा, क्षुब्ध नहीं होऊँगा। दुःखी होने के लिए तो मूढ़ मन चाहिए। साधक का मन तो परमात्मा में डूबा रहता है। मेरी कोई उपेक्षा करे तब भी मैं व्यथित नहीं होऊँगा। मैं इतना शांत रहूँगा कि मुझे अशांत करने की सारी कोशिशें व्यर्थ जायेंगी। ॐ... ॐ... ॐ...'

वेदांत कहता है - 'अज्ञानी की दृष्टि से, देह-दृष्टि से प्रारब्ध है। तत्त्वदृष्टि से प्रारब्ध नहीं है। जैसे पृथ्वी पर बैठते हैं तो सूर्य चलता भासता है। सूर्य को आधार बनावें तो पृथ्वी चलती भासती है। ज्योतिष के सिद्धान्त दोनों प्रकार के हैं। एक में पृथ्वी चलती मानी जाती है तो एक में सूर्य। दोनों से गणित के परिणाम ठीक आते हैं। ऐसा सिद्धान्त भी है कि पृथ्वी तथा सूर्य दोनों चलते हैं और ध्रुव की परिक्रमा करते हैं, यह तो दृष्टि का भेद है।'

- स्वामी श्री अखंडानंद सरस्वतीजी

महान भगवद्भक्त प्रह्लाद

(अंक १७३ से आगे)

विरोचन : 'हे विदुषी केशिनी ! मैं केवल तुम्हारी सुन्दरता पर ही नहीं, तुम्हारी गुण-ग्राहकता और विद्वत्ता पर भी मुग्ध हूँ । तुमने विवाह के संबंध में जो कुल का प्रश्न उठाया है, वह बड़े महत्त्व का और आवश्यक है । तुम जानती हो कि मैं महर्षि मरीचि के कुल में उत्पन्न हुआ हूँ और प्रजापति कश्यपजी मेरे प्रपितामह हैं । अतएव सुधन्वा के कुल की अपेक्षा मेरा कुल श्रेष्ठ है, इसके सिवा स्वयं मैं भी सुधन्वा की अपेक्षा श्रेष्ठ हूँ । मेरे पिताजी अखिल भूमण्डल के सम्राट हैं । ब्राह्मण और देवता हमारे सामने किस गिनती में हैं ?'

केशिनी : 'हे विरोचन ! कुल की परीक्षा करना कोई कठिन बात नहीं है । कल प्रातःकाल ऋषिकुमार सुधन्वा मुझे लेने के लिए आयेंगे । उस समय आप भी आयें । आप दोनों महापुरुषों के सामने मैं इस बात की परीक्षा करूँगी कि कुल के विचार से ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं अथवा दैत्य ?'

दूसरे दिन स्वयंवर का शुभ मुहूर्त था । विरोचन के आने पर केशिनी ने उसे यथोचित शिष्टाचार के साथ बैठाया । सुधन्वा के आने पर आसन, अर्घ्य तथा पाद्यार्घ द्वारा केशिनी उसका सत्कार करने लगी । विरोचन द्वेषवश मन-ही-मन जलने लगा । फिर किसी निमित्त से उन दोनों में आपसी श्रेष्ठता के बारे में प्रश्न उपस्थित हुआ। दोनों ने प्रह्लादजी को इसका निर्णय करने हेतु मध्यस्थ चुना ।

प्रह्लादजी बोले : 'बेटा विरोचन ! हम जानते हैं कि हमारे निर्णय से तुम्हारे प्राणों का अन्त हो रहा है किंतु धर्म के सामने हम तुम्हारे प्राणों की कुछ भी परवा नहीं कर सकते । हम सत्य और पुत्र की तुलना में सत्य ही को अधिक महत्त्व देते हैं ।

राजकुमार ! अपने मिथ्या अभिमान को छोड़कर सुनो । मेरा न्याय यह है कि ऋषिकुमार सुधन्वा के पूज्यपाद पिता महर्षि अंगिरा मुझसे श्रेष्ठ हैं, सुधन्वाजी की पूजनीया माता तुम्हारी माता सुवर्णा से श्रेष्ठ हैं और तुमसे सुधन्वा श्रेष्ठ हैं । अतएव तुम हार गये और सुधन्वा जीत गये ।'

इतना कहने के पश्चात् प्रह्लादजी ने कहा : 'हे विरोचन ! अब तुम्हारे प्राणों के स्वामी ये ऋषिकुमार सुधन्वा हैं, चाहे तुमको जीवित रखें और चाहे तुम्हारे प्राणों को ले लें ।'

'हे सुधन्वाजी ! मैं आपसे विरोचन के प्राणों की याचना करता हूँ ।' - प्रह्लादजी के विनीत वचनों को सुन ऋषिकुमार सुधन्वा ने विरोचन से प्रायश्चित करवाया एवं उसे क्षमा के साथ सप्रेम आशीर्वाद दिया ।

प्रह्लादजी के इस अपूर्व न्याय से, उनकी इस धर्मपरायणता से उनके सारे साम्राज्य में उनकी कीर्ति चौगुनी बढ़ गयी । लोग कहने लगे कि ब्रह्मण्यदेव भगवान वासुदेव के परम भक्त प्रह्लादजी ने यह सुन्दर न्याय अपने स्वरूपानुरूप ही किया है । धन्य है प्रह्लाद की समता और न्यायप्रियता !

(क्रमशः)

महत्त्वपूर्ण निवेदन

सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा । जो सदस्य १७७वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया जुलाई २००७ के अंत तक अपना नया पता भेज दें ।

॥ संत मिलन को जाइये ॥

दुर्लभो मानुषो देहो देहीनां क्षणभंगुरः ।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥

'मनुष्य-देह मिलना दुर्लभ है । वह मिल जाय फिर भी वह क्षणभंगुर है ! ऐसी क्षणभंगुर मनुष्य-देह में भी भगवान के प्रिय संतजनों के दर्शन तो उससे भी अधिक दुर्लभ हैं ।'

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न वै ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

'हे नारद ! कभी मैं वैकुण्ठ में भी नहीं रहता, योगियों के हृदय का भी उल्लंघन कर जाता हूँ परंतु जहाँ मेरे प्रेमी भक्त मेरे गुणों का गान करते हैं वहाँ मैं अवश्य रहता हूँ ।'

कबीर सोई दिन भला जा दिन साधु मिलाय ।
अंक भरै भरि भेंटिये पाप शरीरां जाय ॥१॥

कबीर दरशन साधु के बड़े भाग दरशाय ।
जो होवै सूली सजा काटै ई टरी जाय ॥२॥

दरशन कीजै साधु का दिन में कई कई बार ।
आसोजा का मेह ज्यों बहुत करै उपकार ॥३॥

कई बार नहीं करि सकै दोय बखत करि लेय ।
कबीर साधू दरस ते काल दगा नहीं देय ॥४॥

दोय बखत नहीं करि सकै दिन में करु इक बार ।
कबीर साधु दरस ते उतरे भौ जल पार ॥५॥

दूजै दिन नहीं करि सकै तीजै दिन करु जाय ।
कबीर साधू दरस ते मोक्ष मुक्ति फ्ल पाय ॥६॥

तीजै चौथै नहीं करै सातैं दिन करु जाय ।
या में विलंब न कीजिये कहै कबीर समुझाय ॥७॥

सातैं दिन नहीं करि सकै पाख पाख करि लेय ।
कहै कबीर सो भक्तजन जनम सुफल करि लेय ॥८॥

पाख पाख नहीं करि सकै मास मास करु जाय ।
ता में देर न लाइये कहै कबीर समुझाय ॥९॥

मात पिता सुत इस्तरी आलस बंधु कानि ।
साधु दरस को जब चलै ये अटकावै खानि ॥१०॥

इन अटकाया ना रहै साधू दरस को जाय ।
कबीर सोई संतजन मोक्ष मुक्ति फल पाय ॥११॥

साधु चलत रो दीजिये कीजै अति सनमान ।
कहै कबीर कछु भेंट धरूँ अपने बित अनुमान ॥१२॥

तरुवर सरोवर संतजन चौथा बरसे मेह ।
परमारथ के कारणे चारों धरिया देह ॥१३॥

संत मिलन को जाइये तजी मोह माया अभिमान ।
ज्यों ज्यों पग आगे धरे कोटि यज्ञ समान ॥१४॥

तुलसी इस संसार में भाँति भाँति के लोग ।
हिलिये मिलिये प्रेम सों नदी नाव संयोग ॥१५॥

चल स्वरूप जोबन सुचल चल वैभव चल देह ।
चलाचली के वक्त में भलाभली कर लेह ॥१६॥

सुखी सुखी हम सब कहें सुखमय जानत नाँही ।
सुख स्वरूप आतम अमर जो जाने सुख पाँहि ॥१७॥

सुमिरन ऐसा कीजिये खरे निशाने चोट ।
मन ईश्वर में लीन हो हले न जिह्वा होठ ॥१८॥

दुनिया कहे मैं दुरंगी पल में पलटी जाऊँ ।
सुख में जो सोये रहे वा को दुःखी बनाऊँ ॥१९॥

माला श्वासोच्छ्वास की भगत जगत के बीच ।
जो फेरे सो गुरुमुखी ना फेरे सो नीच ॥२०॥

अरब खरब लों धन मिले उदय अस्त लों राज ।
तुलसी हरि के भजन बिन सबे नरक को साज ॥२१॥

साधु सेव जा घर नहीं सतगुरु पूजा नाँही ।
सो घर मरघट जानिये भूत बसै तेहि माँही ॥२२॥

निराकार निज रूप है प्रेम प्रीति सों सेव ।
जो चाहे आकार को साधू परतछ देव ॥२३॥

साधू आवत देखि के चरणौ लागौ धाय ।
क्या जानौ इस भेष में हरि आपै मिल जाय ॥२४॥

साधू आवत देख करि हसि हमारी देह ।
माथा का ग्रह उतरा नैनन बढ़ा सनेह ॥२५॥

श्रीमद् आद्य शंकराचार्यविरचितम्

॥ गुर्वष्टकम् ॥

शरीरं सुरूपं तथा वा कलत्रं
यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम् ।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं
ततः किं ततः किम् ॥१॥

'यदि शरीर रूपवान हो, पत्नी भी रूपसी हो और सत्कीर्ति चारों दिशाओं में फैली हुई हो, मेरु पर्वत के तुल्य अपार धन हो किंतु गुरु के श्रीचरणों में यदि मन आसक्त न हो तो इन सारी उपलब्धियों से क्या लाभ ?'

कलत्रं धनं पुत्रपौत्रादि सर्वं
गृहं बान्धवाः सर्वमेतद्धि जातम् ।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥२॥

'सुन्दरी पत्नी, धन, पुत्र-पौत्र, घर एवं स्वजन आदि प्रारब्ध से सब सुलभ हों किंतु गुरु के श्रीचरणों में मन की आसक्ति न हो तो इस प्रारब्ध-सुख से क्या लाभ ?'

षडंगादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या
कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति ।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं
ततः किं ततः किम् ॥३॥

'वेद एवं षट्वेदांगादि शास्त्र जिन्हें कंठस्थ हों, जिनमें सुन्दर काव्य-निर्माण की प्रतिभा हो, उनका मन यदि गुरु के श्रीचरणों के प्रति आसक्त न हो तो इन सद्गुणों से क्या लाभ ?'

विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः
सदाचारवृत्तेषु मत्तो न चान्यः ।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं
ततः किं ततः किम् ॥४॥

'जिन्हें विदेशों में समादर मिलता हो, अपने देश में जिनका नित्य जय-जयकार से स्वागत किया जाता हो और जो सदाचार-पालन में भी अनन्य स्थान रखते हों, यदि उनका भी मन गुरु के श्रीचरणों के प्रति आसक्त न हो तो इन सद्गुणों से क्या लाभ ?'

क्षमामण्डले भूपभूपालवृन्दैः
सदा सेवितं यस्य पादारविन्दम् ।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरंघ्रिपद्मे
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥५॥

'जिन महानुभाव के चरणकमल पृथ्वीमण्डल के राजा-महाराजाओं से नित्य पूजित रहा करते हों, उनका मन यदि गुरु के श्रीचरणों में आसक्त न हो तो इस सद्भाग्य से क्या लाभ ?' (संक्षिप्त)

(पृष्ठ ८ का शेष)

की शक्ति साधारण मनुष्य को रूपांतरित करके भक्त बना देती है, भक्त को साधक बना देती है और समय पाकर वही साधक सिद्ध हो जाता है, जन्म-मरण से पार हो जाता है।

दुनिया के सब मित्र मिलकर, सब साधन मिलकर, सब सामग्रियाँ मिलकर, सब धन-संपदा मिलकर भी मनुष्य को अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश - इन पाँच दोषों से नहीं छुड़ा सकते। सद्गुरुओं का सान्निध्य और सद्गुरुओं की दीक्षा ही बेड़ा पार करने का सामर्थ्य रखती है।

धनभागी हैं वे लोग जिनमें वेदव्यासजी जैसे आत्मसाक्षात्कारी पुरुषों का प्रसाद पाने की और बाँटने की तत्परता है !

वर्षा ऋतु विशेष

वर्षा ऋतु में प्राकृतिक स्थिति :

सूर्य : दक्षिणायन में होता है । मेघ, वायु, वर्षा से सूर्य का बल (तेज) कम हो जाता है ।

चंद्र : बल पूर्ण होता है ।

वायु : नमीयुक्त होती है ।

जल : अम्ल रसयुक्त होता है ।

पृथ्वी : वर्षा के कारण पृथ्वी का ताप शांत होने से अम्ल, लवण, मधुर रसयुक्त, स्निग्ध आहार द्रव्यों व औषधियों की उत्पत्ति होने लगती है ।

शारीरिक स्थिति :

बल : अत्यल्प ।

जीवनीशक्ति : क्षीण ।

जठराग्नि : अत्यधिक दुर्बल ।

दोष : वात का प्रकोप, पित्त का संचय ।

हितकर आहार :

वर्षा ऋतु में वायु का शमन व जठराग्नि प्रदीप्त करनेवाला आहार लेना चाहिए । इस हेतु भोजन में अदरक, लहसुन, नींबू, सोंठ, अजवायन, मेथी, जीरा, अल्प मात्रा में हींग, काली मिर्च, पीपरामूल का उपयोग करें ।

जौ, गेहूँ, एक वर्ष पुराने चावल, परवल, सहिजन, जमींकंद, करेला, शिमला मिर्च, पुनर्नवा, मेथी, बथुआ, सुआ, पुदीना, बैंगन, लौकी (घीया), पेठा, तोरई आदि पचने में हलके व वायुशामक पदार्थ सेवनीय हैं ।

मधु का सेवन इन दिनों में विशेष हितकर है । तिल तेल सभी गुणों से वायुशामक होने के कारण उत्तम है ।

आँवला अथवा हरड़ का अचार, कोकम व लहसुन की चटनी, मूँग व कुलथी का सूप, भिगोये हुए मूँग, अदरक व गुड़ से बना अदरक पाक- ये सभी स्वाद, जठराग्नि व स्वास्थ्य बढ़ानेवाले हैं ।

एक भाग पुनर्नवा में चौथाई भाग हरा धनिया, पुदीना व थोड़ी-सी काली मिर्च मिलाकर बनायी गयी चटनी भूखवर्धक व उत्तम पाचक है । यह यकृत, गुर्दे व हृदय के लिए हितकर है ।

जल :

जल में ८-१० निर्मली के बीज मिलाकर, उबालकर ठंडा किया गया जल पीयें अथवा इन बीजों को कूटकर जल के पात्र में डालकर रखें । इससे पानी निर्मल हो जाता है ।

सोंठ, जीरा, नागरमोथ से सिद्ध जल उत्तम वात-पित्त शामक है । आकाश में जब तक बादल हों तब तक (सितम्बर महीने तक) इसका सेवन स्वास्थ्य में निश्चय ही सुधार लाता है ।

वर्षा ऋतु में प्रातः २-३ ग्राम हरड़ चूर्ण में चुटकी भर सेंधा नमक मिलाकर ताजे पानी के साथ लें ।

पुनर्नवा अर्क व गोझरण अर्क का सेवन शरीर की शुद्धि व व्याधियों से सुरक्षा करनेवाला है ।

अहितकर आहार :

* सूखे मेवे, मिठाई, दही, पनीर, मावा, रबड़ी, तले हुए, खमीरीकृत (इडली, खमण, ब्रेड आदि), बासी, पचने में भारी पदार्थ सर्वथा त्याज्य हैं।

* चना, तुअर (अरहर), मटर, मसूर, राजमा, चौलाई, मकई, बाजरा, सेम, आलू, शकरकंद, पत्तागोभी, फूलगोभी, ग्वारफली, अरवी जैसे वायुवर्धक पदार्थ त्याज्य हैं ।

हितकर विहार :

धूप, होम-हवन से वातावरण को शुद्ध रखें। वस्त्रों में नीम के सूखे पत्ते रखें। गोमूत्र से अथवा आश्रम में उपलब्ध 'गौसेवा फिनायल' से घर को साफ-सुथरा रखें। नीम के सूखे पत्तों अथवा आश्रम द्वारा निर्मित 'गौ-चंदन' धूपबत्ती से धूप करें। घर के आस-पास अथवा बगीचे, नदी, तालाबों के किनारों पर तुलसी के पौधे लगायें। इससे बाह्य वातावरण, तन व मन शुद्ध एवं पवित्र होने में मदद मिलेगी।

* तिल तेल अथवा वायुनाशक औषधियों से सिद्ध तेलों (दशमूल, महानारायण तेल आदि) से संपूर्ण शरीर की मालिश करें। कान में सरसों का तेल डालें, नाक में तिल तेल अथवा 'अणुतेल' डालें, सिर तथा पैरों के तलुओं की मालिश करें। वर्षा ऋतु में बस्ति-उपक्रम (गुदा के द्वारा औषधियों को शरीर में प्रविष्ट करना) अत्यंत लाभदायी है।

अहितकर विहार :

शीत जल से स्नान, नदी में स्नान, तैरना, ओस में अथवा आकाश बादलों से भरा हुआ हो तब खुले में- छत आदि पर शयन; दिन में शयन, अधिक व्यायाम, अधिक परिश्रम, वाहनों में अधिक घूमना अथवा अधिक पैदल चलना निषिद्ध है।

वर्षा ऋतु के लिए वायुनाशक चूर्ण

छोटी हरड़ (बाल हर्र) को प्रथम दिन छाछ में भिगोकर रखें। दूसरे दिन छाया में सुखायें। इस प्रकार ३ से ६ बार भिगोकर सुखाने के बाद हरड़ का कपड़छन चूर्ण बनायें। १ भाग हरड़ चूर्ण में चौथाई भाग अजवायन व आठवाँ भाग काला नमक मिलाकर रखें।

लगभग २ ग्राम मिश्रण भोजन के बाद गुनगुने पानी के साथ लें। इससे पाचनशक्ति बढ़ती है, पेट साफ होता है। मंदाग्नि, अजीर्ण, पेट में वायु, दर्द, डकार आदि का यह श्रेष्ठ इलाज है।

बहुगुणी, स्वादिष्ट : अदरक पाक

छीलकर कद्दूकस किया हुआ अदरक ५०० ग्राम, पुराना गुड़ ५०० ग्राम और गाय का घी १२५ ग्राम लें। अदरक को घी में लाल होने तक भून लें। गुड़ की चासनी बनाकर उसमें भूना हुआ अदरक तथा इलायची, जायफल, जावित्री, लौंग, दालचीनी, काली मिर्च, नागकेसर व केसर प्रत्येक ६-६ ग्राम मिलाकर सुरक्षित रख लें।

१० से २० ग्राम पाक सुबह-शाम चबाकर खायें। यह उत्तम वात-कफ नाशक, अग्निदीपक, पाचक, मलनिस्सारक, रुचिप्रद व कंठ के लिए हितकर है। दमा, खाँसी, जुकाम, स्वर भंग, अरुचि आदि कफ-वात जन्य विकारों में व मंदाग्नि, कब्ज, भोजन के बाद पेट में भारीपन, अफरा अथवा दर्द तथा शरीर के किसी भी अंग में होनेवाले दर्द में इस पाक के सेवन से बहुत लाभ होता है। शरीर में चुस्ती व स्फूर्ति भी आती है।

सावधानी : पित्त प्रकृतिवाले तथा पित्तजन्य व्याधियों से ग्रस्त व्यक्ति इस पाक का सेवन न करें।

दाँतों के लिए प्रयोग

* रात को नींबू के रस में दातुन के अगले हिस्से को डुबों दें। सुबह उस दातुन से दाँत साफ करें तो मैले दाँत भी चमक जायेंगे।

* सप्ताह-पन्द्रह दिन में एक बार रात को सरसों का तेल और सेंधा नमक मिला के इससे दाँतों को रगड़ लें। इससे दाँत और मसूड़े मजबूत बनेंगे।

– पूज्य बापूजी

वैद्यराज धनशंकरजी कहते हैं

रक्तशुद्धिकर, पित्तशामक

नीम अर्क

नीम के पत्तों से बना यह अर्क रक्त को शुद्ध करनेवाली बहुमूल्य औषधि है । यह दाद, खाज, खुजली, कील, मुँहासे तथा पुराने त्वचाविकारों में अत्यंत लाभदायी है । यह उत्तम कृमिनाशक, दाह व पित्त शामक है । पीलिया, पांडु, रक्तपित्त, अम्लपित्त, उलटी, प्रमेह, विसर्प (हरपिझ) व लीवर के रोगों को दूर करनेवाला है । यह बालों को झड़ने से रोकता है । रक्तप्रदर, गर्भाशय शोथ, खूनी बवासीर और आँखों के रोगों में भी लाभदायक है ।

सेवनविधि : १० से ३० मि.ली. अर्क (बालकों हेतु - २ से ५ मि.ली.) समभाग पानी मिलाकर दिन में २ बार ।

विशेष : ❊ चर्मरोग में ५ लीटर पानी में ५० मि.ली. अर्क मिलाकर स्नान करें । ❊ १५ दिन तक ही इसका नियमित सेवन करें । तत्पश्चात् ४-५ दिन बंद करके पुनः ले सकते हैं ।

शीतल, कफनाशक

वासा (अडूसा) अर्क

वासा अर्क संचित कफ को पतला कर बाहर निकाल देता है । अतः यह फुफ्फुस विकार, गले में सूजन, श्वास (दमा), खाँसी, कफजन्य ज्वर तथा अन्य सभी प्रकार के कफ विकारों में व क्षयरोग में बहुत लाभदायी है । यह रक्तगतपित्त को शांत करता है । नाक, आँख, मुँह, योनि, पेशाब आदि के द्वारा होनेवाले रक्तस्राव की यह अद्वितीय औषधि है । खूनी बवासीर व खूनी दस्त में भी यह लाभदायी है ।

सेवनविधि : २० से ४० मि.ली. अर्क (बालकों हेतु - ५ से १० मि.ली.) दिन में २ से ३ बार लें ।

स्मृतिवर्धक, कैंसर-निवारक

तुलसी अर्क

धर्मशास्त्रों में तुलसी को अत्यंत पवित्र व माता के समान माना गया है । तुलसी एक उत्कृष्ट रसायन है । आज के विज्ञानियों ने इसे एक अद्भुत औषधि (Wonder Drug) कहा है ।

लाभ : यह कफजन्य ज्वर, विषमज्वर (विशेषतः मलेरिया), सर्दी-जुकाम, श्वास, खाँसी, अम्लपित्त, दस्त, उलटी, हिचकी, मुख की दुर्गंध, मंदाग्नि, कृमि, पेचिश में लाभदायी व हृदय के लिए हितकर है । यह रक्त में से अतिरिक्त स्निग्धांश को हटाकर रक्त को शुद्ध करता है । यह सौंदर्य, बल, ब्रह्मचर्य एवं स्मृति वर्धक व कीटाणु, त्रिदोष और विष नाशक है ।

सेवनविधि : १० से २० मि.ली. अर्क में उतना ही पानी मिलाकर खाली पेट ले सकते हैं । रविवार को न लें । तुलसी अर्क लेने से पूर्व व पश्चात् डेढ़-दो घंटे तक दूध न लें ।

शरीर को पुनः नयापन देनेवाला

पुनर्नवा अर्क

पुनर्नवा शरीर के कोशों को नया जीवन प्रदान करनेवाली श्रेष्ठ रसायन औषधि है । यह कोशिकाओं में से सूक्ष्म मलों को हटाकर संपूर्ण शरीर की शुद्धि करती है, जिससे किडनी, लीवर, हृदय आदि अंग-प्रत्यंगों की कार्यशीलता व मजबूती बढ़ती है तथा युवावस्था दीर्घकाल तक बनी रहती है ।

लाभ : यह अर्क किडनी की सूजन, मूत्राश्मरी (पथरी), उदररोग, सर्वांगशोथ (सूजन), हृदय दौर्बल्यता, श्वास, पीलिया, पांडु (रक्ताल्पता), जलोदर, बवासीर, भगंदर, हाथीपाँव, खाँसी तथा लीवर के रोग व जोड़ों के दर्द में विशेष लाभदायी है । यह हृदयस्थ रक्तवाहिनियों को साफ कर हृदय को मजबूत बनाता है । आँखों हेतु भी हितकारी है । इसके सेवन से आँखों का तेज बढ़ता है । बाल घने व काले होते हैं । यह अनिद्रानाशक व पित्तशामक है ।

सेवनविधि : २० से ५० मि.ली. अर्क आधी कटोरी पानी में मिलाकर दिन में एक या दो बार लें । इसके सेवन के बाद एक घंटे तक कुछ न लें ।

केवल साधक परिवार के लिए संत श्री आसारामजी आश्रमों व सेवाकेन्द्रों पर उपलब्ध ।

तस्वीर का प्रभाव

छत्तीसगढ़ जिला दुर्ग, नगर अहिवारा के साधक अवधभाई के बड़े भाई का देहांत हो गया ! तीन दिन के बाद उनकी पत्नी के अंदर एक प्रेत आ गया । पूरे परिवारवालों को परेशान करने लगा । घर में पत्थर फेंकना, मारपीट करना, चिल्लाना; रात को डर के कारण कोई सोता नहीं था । हद तो तब हो गयी, जब वह महिला मर्दाना आवाज में बोली : 'अवध अब तेरी बारी है । तैयार हो जा ।'

तांत्रिकों द्वारा झाड़-फूँक कराया लेकिन फायदा नहीं हुआ । देवी-देवताओं के चित्र उसके सामने ले जाते तो प्रेतात्मा हँसती और कहती : 'इससे मेरा कुछ नहीं बिगड़ सकता ।' इतने में एक साधक, जिसके हाथ की कलाई पर 'हरिॐ' छपा हुआ था, से प्रेत ने कहा : 'मुझे छूना नहीं जलन होती है ।' फिर तुरंत बापूजी की तस्वीर लायी गयी तब उसने आँखें बंद करके कहा : 'मुझे पीड़ा हो रही है ।' और प्रेतात्मा रो पड़ी । अवधभाई की हिम्मत बढ़ी । तस्वीर और करीब ले गये । पूछा : 'क्या होता है ? कौन हैं ये ?' प्रेत ने कहा : 'ये तो महान संत हैं । इनका तेज अद्‌भुत है, मुझसे सहन नहीं होता ।' फिर तो पूरे कमरे में पूज्य बापूजी की तस्वीर लगा दी गयी । चार घंटे तक वह महिला बेहोश रही । जब होश में आयी तो प्रेतात्मा जा चुकी थी । यह देखकर सभी पड़ोसियों ने भी पूज्य बापूजी की तस्वीर अपने-अपने घरों में लगा दी ।

– सूर्यभान साहू, अहिवारा,
जि. दुर्ग (छ.ग.)।

सं|स्था||स|मा|चा|र

('ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि)

अधिक मास के पूर्णिमा दर्शन का कार्यक्रम ३१ मई को रामलीला मैदान, दिल्ली के विशाल प्रांगण में संपन्न हुआ । इस एक दिवसीय पूनम दर्शन सत्संग समारोह में पूज्य बापूजी के दीवानों की विराट उपस्थिति ने विशाल मैदान को भी नन्हा साबित कर दिया । ग्रीष्म ऋतु की कड़ी तपन और घर-घर में जीवन्त प्रसारण होने के बावजूद ब्रह्मवेत्ता संतश्री के दर्शन तथा अमृतवाणी के रसपान के लिए उमड़ा हुजूम यह साबित करता है कि समाज व राष्ट्र की एकता एवं अखंडता के लिए आवश्यक दैवी संपदा अभी भी देश में भरपूर है । वास्तव में यह दैवी संपदा हमारे देश की अमूल्य धरोहर है ।

रामसेतु को विश्व की अमूल्य धरोहर बताते हुए पूज्य बापूजी ने कहा : ''रामसेतु मानव-जाति की धरोहर है, विश्व-जाति को इसकी रक्षा करनी ही चाहिए । यह हिन्दुस्तानियों की आस्था, विश्वास, श्रद्धा से जुड़ी हुई कड़ी है । श्रीराम हिन्दुओं की अस्मिता के प्रतीक हैं । रामसेतु देश की एकता, अखंडता और पर्यावरण से भी जुड़ा है । विश्व की सबसे बड़ी ऊर्जा थोरियम का भण्डार वहाँ मौजूद है । सरकार को चाहिए कि ऐसी राष्ट्रीय धरोहर की रक्षा करे । हम सरकार की योजना का विरोध नहीं कर रहे हैं, विकास अवश्य होना चाहिए परंतु देश का ऐसे विकास से कहाँ तक भला होगा, जिससे हमारी सांस्कृतिक विरासत का विनाश हो रहा हो ? भारतीय संस्कृति नष्ट होने से मानवता ही नष्ट हो जायेगी । सरकार को ऐसा कदम उठाना चाहिए जिससे रामसेतु भी बचा रहे और सरकारी योजना भी पूरी हो । ऐसे विकल्प मौजूद भी हैं, उन विकल्पों की ओर ध्यान देना चाहिए ।''

अगले ही दिन १ जून को अमदावाद आश्रम में भी पूर्णिमा दर्शन व सत्संग कार्यक्रम सम्पन्न हुआ । अधिक मास की इस पूर्णिमा के अवसर पर पूज्यश्री ने छोटे-

से-छोटे व्यक्ति को महानता के शिखर पर पहुँचा दे, ऐसे ५ साधन बताये (पढ़िये पृष्ठ १० पर)।

हिमाचल प्रदेश के नादौन स्थित अमतर मैदान में १६ जून को पूज्यश्री का पदार्पण हुआ। यहाँ १६-१७ जून के दो दिवसीय सत्संग से स्थानीय जनता खूब उत्साहित, आनंदित, प्रमुदित थी। व्यास नदी के तट पर पूज्यश्री ने भक्ति व ज्ञान की अनुपम गंगा बहायी। देवभूमि के इस क्षेत्र में पहली बार पधारे ब्रह्मवेत्ता पूज्य बापूजी के दर्शन-सत्संग के लिए स्थानीय लोगों का हुजूम, उनकी उत्कृष्ट श्रद्धा देखते ही बनती थी। इस भूमि पर परम पूज्य बापूजी के आगमन पर अपना अभिनन्दन व्यक्त करते हुए राज्य सरकार ने पूज्य बापूजी को राज्य अतिथि का दर्जा प्रदान कर देवभूमि का गौरव बढ़ाया। स्थानीय विधायक श्री सुखविन्दर सिंह, पूर्व मुख्यमंत्री एवं वर्तमान सांसद श्री प्रेम कुमार धूमल व श्री योग वेदांत सेवा समिति की स्थानीय इकाई ने परम पूज्य बापूजी का भावभीना स्वागत किया।

एक ओर जहाँ पूज्य बापूजी हिमाचल प्रशासन के राज्य अतिथि थे, वहीं दूसरी ओर शनिवार की शाम आयी तेज वर्षा के कारण प्रदेश के अन्य भागों से आये हजारों श्रद्धालु नादौन में ही फँस गये और नादौनवासियों के अतिथि हुए। स्थानीय लोगों ने अपने घरों, मंदिरों, जैन मंदिर, गुरुद्वारा साहिब व गीता भवन में उनके ठहरने की व्यवस्था की। शनिवार की रात्रि नगर के ८०% घरों में भक्तों के ठहरने से नादौन शहर मानों अतिथिगृह बन गया था। देवभूमि में नागरिकों ने अपनी संस्कृति के अनुरूप '**अतिथिदेवो भव**' की परंपरा की सुंदर सुवास महकायी। उल्लेखनीय है कि पूज्य बापूजी यहाँ पहली बार पधारे थे, फिर भी हिमाचलवासियों को बापूजी जाने-माने, पुराने पहचाने से महसूस होते थे। हिमाचल और हिन्दुस्तान के कोने-कोने से आये भक्त बापूजी के सत्संग के निमित्त दूध में शक्कर की नाईं हिलमिल गये। हिमाचलवासी और हिन्दुस्तानवासी सभी सत्संग की स्नेह-सरिता में, प्रेमाभक्ति के प्रकाश में, गुरु के ज्ञान-प्रकाश में सूझ-बूझ व स्नेह के धनी पाये गये।

नादौन से अमृतसर की ओर जाते हुए रास्ते में अम्ब, होशियारपुर व जालंधर में भी 'एक शाम राम के नाम' हुई। होशियारपुर में स्थानीय समिति व नगर के गणमान्य लोगों ने पुष्पमालाओं से पूज्यश्री का भावभीना स्वागत किया, जिसमें वनराज्य मंत्री श्री तिक्षण सूद भी सहभागी हुए।

'सेतु समुद्रम परियोजना' भारत के भौगोलिक हितों की दृष्टि से गंभीर परिणामकारी हो सकती है। सेतु समुद्रम के कारण हमारी जलराशि में अमेरिकी उपस्थिति से वह सब होगा, जिसको शताब्दियों से हमारे हित में कभी आवश्यक नहीं माना गया। इससे हमारा देश कमजोर होगा तथा देश पर नये खतरे पैदा हो सकते हैं।

परियोजना में किसी भी तरह के निर्माण को रोका जाय या ऐसी किसी भी कार्रवाई को रोका जाय जो राष्ट्र और स्वराज विरोधी है। अगर इस बिन्दु पर कोई निर्णय किया जा चुका है तो उस पर फिर से विचार करें। - न्यायमूर्ति श्रीकृष्ण अय्यर, सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश।

सरकार धार्मिक भावनाओं का सम्मान करे। जिस रामसेतु ने भारत के तटों की रक्षा की, उसे तोड़े बिना दूसरा जलमार्ग ढूँढ़ा जाय। - न्यायमूर्ति श्री के.टी. थामस
सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश।

वाराणसी (उ.प्र.) के विद्यार्थी शिविर में हास्य-प्रयोग द्वारा प्रसन्नता का प्रसाद प्राप्त करते विद्यार्थी तथा काटोल जि.नागपुर (महा.) के विकलांग बच्चों के जीवन में मधुर कीर्तन द्वारा माधुर्य रस छलकाते हुए पूज्य बापूजी के सेवाभावी शिष्य।

स्मरणशक्ति बढ़ाने के गुर सीखते हुए सोनई जि. अहमदनगर (महा.) के विद्यार्थी तथा भिवाड़ी, अलवर (राज.) के विद्यार्थी शिविर में पूर्णाहुति के क्षणों में गद्गद छात्राएँ।

वैदिक मंत्रोच्चार के साथ भगवान सूर्यनारायण को अर्घ्य प्रदान करते हुए लींबडी जि. सुरेन्द्रनगर (गुज.) के विद्यार्थी तथा कटिहार (बिहार) के विद्यार्थी शिविर में भारतीय संस्कृति के उच्च संस्कारों का ज्ञान प्राप्त करते हुए विद्यार्थी।

येवला जि. नासिक (महा.) के विद्यार्थी शिविर में छात्राओं ने भगवद्ध्यान का लाभ लिया तथा बारां (राज.) के विद्यार्थी शिविर में विद्यार्थियों ने भ्रामरी प्राणायाम आदि विभिन्न यौगिक युक्तियाँ सीखीं ।

1 July 2007
RNP. NO. GAMC 1132/2006-08
WPP LIC NO. GUJ-207/2006-08
RNI NO. 48873/91
DL(C)-01/1130/2006-08
WPP LIC NO. U(C)-232/2006-08
G2/MH/MR-NW-57/2006-08
WPP LIC NO. MH/MR/14/07
'D' NO. MH/MR/TECH-47/4/07

मन के शिकंजे से छूटने का सबसे सरल और श्रेष्ठ उपाय यह है कि आप किसी समर्थ सद्गुरु के सान्निध्य में पहुँच जायें।
- स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज

मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई । लगे चरन चापन दोउ भाई ॥

उद्धव ! तुम गुरुदेव की उपासनारूप अनन्य भक्ति के द्वारा अपने ज्ञान की कुल्हाड़ी को तीखी कर लो और उसके द्वारा धैर्य एवं सावधानी से जीवभाव को काट डालो। - भगवान श्रीकृष्ण

जिसके मुख में गुरुमंत्र है उसके सब कर्म सिद्ध होते हैं, दूसरे के नहीं। दीक्षा के कारण शिष्य के सर्व कार्य सिद्ध हो जाते हैं । - भगवान शिवजी

नारद बचन न मैं परिहरऊँ । बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ ॥
गुर कें बचन प्रतीति न जेही । सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही ॥
- जगन्माता पार्वतीजी

गुरु भक्तों के लिए वात्सल्यमूर्ति माँ हैं । वे भक्तों के घर पर कृपा-अमृत की धाराएँ बरसानेवाली कामधेनु गाय हैं। - संत ज्ञानेश्वरजी महाराज

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान ।
सिर दीजे सद्गुरु मिले, तो भी सस्ता जान ॥ - संत कबीरजी

चाहे कितना भी जप-तप करे, यम-नियमों का पालन करे परंतु जब तक सद्गुरुरूपी सूर्य का आत्मप्रकाश नहीं मिलता तब तक सब व्यर्थ है। - स्वामी रामतीर्थ

यदि तुम गुरुवाक्य पर बालक की भाँति विश्वास करो तो तुम भगवान को पा जाओगे । - श्री रामकृष्ण परमहंस

बारह कोस चलकर जाने से भी यदि सत्पुरुष के दर्शन मिलते हों तो मैं पैदल चलकर जाने के लिए तैयार हूँ क्योंकि ऐसे ब्रह्मवेत्ता महापुरुष के दर्शन से कैसा आध्यात्मिक लाभ मिलता है वह मैं अच्छी प्रकार से जानता हूँ। - स्वामी विवेकानंदजी

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई॥
- संत तुलसीदासजी

मुख में सद्गुरु का नाम हो, हृदय में सद्गुरु का प्रेम हो, देह में सद्गुरु का ही अहर्निश, अविश्रान्त कर्म हो । - संत एकनाथजी महाराज

ऐसे गुरुदेव का ऋण मैं किस प्रकार चुका सकता हूँ जिन्होंने मुझे फिर से जन्म नहीं लेना पड़े- ऐसी कृपा मुझ पर कर दी।
- संत नामदेवजी महाराज

लाखों-लाखों जन्म के माता-पिता जो न दे सके वह मेरे परम पिता गुरुदेव ने मुझे हँसते-खेलते दे दिया । मुझे घर में ही घर बता दिया ।
- पूज्य बापूजी

सद्गुरु बिना मोक्षप्राप्ति हो यह कल्पों के अंत में भी संभव नहीं है।
- समर्थ रामदास स्वामी

सत्गुरशाह तारया श्रद्धा वारा लख. - स्वामी साहिब

Posting at Rishi Prasad PSO between 1st to 14th of E.M. Back issue at PSO-AHD * Posting at ND.PSO on 5th & 6th of E.M. * Posting at MBI Patrika Channel on 9th & 10th of E.M.